निकेतन-रत्न-माला, चौथा रत्न

मेरी कैलाश-यात्रा

लेखक

स्वामी सत्यदेव परिब्राजक

रचयिता

'हिन्दू-धर्म की विशेषताएँ', 'यात्री-मित्र', 'सञ्जीवनी बूटी',
'देव-चतुर्दशी', 'अनुभव', 'सगठन का बिगुल',
'लेखन-कला' 'अमरीका-भ्रमण',
'मेरी जर्मन-यात्रा' इत्यादि।

थी दिल में यह चाह, हों दर्शन कैलाश के;
मिटे हृदय की दाह, मानसरोवर स्नान से।

—देवदूत

पुस्तक मिलने का पता—

नया संस्करण जनवरी सन् १९३७ | मैनेजर, सत्य ज्ञान-निकेतन, ज्वालापुर (यू० पी०) | मूल्य बारह आने

समर्पण

श्री कैलाश जी के कठिन धाम की यात्रा करने में जिन सहृदय प्रेमी सज्जनों ने मेरी सहायता की है, उनके करकमलों में यह ग्रन्थ सादर समर्पित करता हूँ।

सत्यदेव

दो शब्द

इस पुस्तक के विपय मे भूमिका के तौर पर अब कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रही। सन् १९१५ मे मैंने कैलाश-यात्रा की थी और सन् १९१६ में इसका प्रथम सस्करण छपा था। तब से आजतक इसके कई सस्करण छप चुके है। सैकड़ो यात्री इसकी बदौलत कैलाश-यात्रा कर आये और कुछ लेखको ने इसके सहा रे घर ठे 'कैलाश दर्शन' भी लिख डाले।

अब इसका यह सशोधित सस्करण मैंने सत्य ज्ञान-निकेतन ज्वालापुर की ओर से प्रकाशित करवाया है। वहीं मेरा आश्रम है और वहीं से मै अपने विचारों का प्रचार करता हूं। सब प्रेमी वही आकर दर्शन दिया करे और दूसरे सब देशबन्धुओ को मेरे निकेतन की सूचना देदे।

सत्य ज्ञान-निकेतन,
ज्वालापुर (यू०पी०)

विनीत—
सत्यदेव परिव्राजक

विषय-सूची

४ चतुर्थ खण्ड

[दोहा]

महादेव योगीश का, युग-युग रहे प्रकाश।
जिन के दर्शन-हेतु यह, रचा ग्रन्थ 'कैलाश'॥

मेरी कैलाश-यात्रा।

प्रारम्भिक बातें

हमारे दो बड़े प्रसिद्ध तीर्थ—श्रीकैलाश और मानसरोवर—पश्चिमी तिब्बत मे है। भारतवर्ष के नकशे को उठाकर देखिए—उत्तर मे हिमालय लांघकर कश्मीर से आसाम तक एक लम्बा देश फैला हुआ है। यही तिब्बत है। यही है जिसको Mysterious Thibet रहस्यपूर्ण तिब्बत कहते है। यद्यपि हमारे पवित्र तीर्थों का वहां पर होना इस बात का पूर्णतया द्योतक है कि किसी काल मे हिन्दू प्रभुता वहां पर थी, और हमारे बौद्ध भिक्षु, बराबर वहां जाकर धर्मोपदेश किया करते थे, पर इन सब बातों को हुए सदियां बीत गईं। आज तिब्बत सचमुच रहस्यो से पूर्ण है, आज भी शिक्षित संसार को उसके विषय मे बहुत कम मालूम है।

अच्छा, नकशा उठाकर देखिये। भारत के कौन कौन से प्रान्त तिब्बत को छूते है,—कश्मीर, कांगड़ा, रामपुर, बशहर, गढ़वाल, अल्मोड़ा, नैपाल, शिकिम, भूटान और आसाम—ये नौ प्रान्त ऐसे

हैं जिनका तिब्बत से सीधा सम्बन्ध है। इनमे से नैपाल, शिकिम और भूटान, ये तीन तो ऐसी रियासते है जिनके विषय मे हमारे स्कूलों मे कुछ भी पढाया नही जाता और हम अपने इन भारतीय अङ्गो के विषय मे वहुत कम जान सकते है। आसाम अति बन्य देश है। वहां से जो मार्ग तिब्बत को जाता है वह ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी द्वारा जाता होगा और ब्रह्मपुत्र के मार्ग के विषय मे ससार के विद्वानो ने अभी कुछ भी नही जाना। बाकी जो भाग तिब्बत का है वह पश्चिमी तिब्बत हमारे बाकी पांच प्रदेशो को छूता है। उधर से जिन घाटो द्वारा हमारे व्यापारी तिब्बतियो से तिजारत करते है उनके नाम धाम नीचे लिखे जाते है—

पहिला मार्ग—श्रीनगर (कश्मीर) से सिन्धु नदी की घाटी के रास्ते से होकर गरतोक जाता है। गरतोक तिब्बत मे व्यापारी मंडी का स्थान है। श्रीनगर तथा लद्दाख से व्यापारी लोग इसी रास्ते तिब्बत जाते है।

दूसरा—कांगड़ा (पजाब) जिले के लोग लाहौल होकर दमचोक के घाटे से रुदोक जाते हैं।

तीसरा—कुल्लु के व्यापारी सपिती होकर शगरंग घाटे से तिब्बत जाते है।

चौथा—रामपुर बशहर तथा शिमले के लोग शिपकी और सिरग घाटो से तिब्बत पहुंचते हैं। शिपकी १५४०० फीट और शिरग १६४०० फीट की ऊचाई के घाटे है।

पांचवां—मसूरी (देहरादून) से एक रास्ता टिहरी होकर गगोत्री की खबर लेता हुआ लिलांग घाटा पार कर तिब्बत ले जाता है। श्री गगाजी के दृश्य इधर खूब देखने मे आते है।

छठा—गढ़वाल वाले माना (१७८९० फीट) और नेती (१६६२८ फीट) इन दो घाटो द्वारा अपना माल तिब्बत ले जाते

है। इनके बीच मे कमेट नामी चोटी २५४४३ फीट ऊंची आकाश से बाते करती है। मानावाला रास्ता श्री केदारनाथ जी के पास से गुजरता है और नेतीवाला रास्ता श्री बद्रीनाथ होकर दाबा (तिब्बत) जाता है। मैदान से जाने वाले बन्धु कोटद्वार तक रेल मे जाकर आगे इस मार्ग को पकड़ सकते है; या ऋषिकेश होकर लक्ष्मणझूले से बद्रीनारायणजी वाली सड़क द्वारा जा सकते है।

सातवां—जोहार (अल्मोड़ा) वाले मीलम से चलते है। सामने हिमालय की तीन ऊची दीवारे है। पहली ऊटाधुरा की १७५९० फीट ऊची दीवार है; दूसरी जती की १७००० फीट ऊ ची है; तीसरा सबसे कठिन कुङ्गरी बिङ्गरी का घाटा (दर्रा) है जो १८३०० फीट ऊ चा है। इन तीनो बर्फानी पहाड़ो को पारकर तिब्बत पहुंचते है। मै इसी बिकट मार्ग से गया था। श्री कैलाश जी की सीधी परिक्रमा का यही मार्ग है।

आठवां—दारमा (अल्मोड़ा) के लोगो का रास्ता दारमा घाटा होकर जाता है। ये लोग भी ग्यानिमा मण्डी (तिब्बत) जाते है।

नवाँ—व्याना (अल्मोड़ा) के लोग लकपूलेख नामी घाटे से ग्यानिमा पहुंचते हैं।

दसवां—चौन्दास (अल्मोड़ा) निवासी लीपूघाटे से (१६७८० फीट) तकलाकोट तिब्बती मण्डी मे पहुंचते है। मै इसी रास्ते से वापिस आया था। यात्री कैलाश जी से इसी रास्ते लौटते है।

उपरोक्त दस घाटो मे से हमारा सम्बन्ध केवल अल्मोड़ा जिले के उन घाटो से है जिनका कैलाश और मानसरोवर के मार्ग के साथ सम्बन्ध है।

पहिला घाटा कुगरीबिङ्गरी का जोहार होकर जाता है। कैलाश जी के जाने का यह मार्ग है, दूसरा है व्यास चौन्दास के रास्ते से लीपूधुरा का मार्ग। इधर से यात्री कैलाश जी से लौटकर भारत आते है। यो तो अन्य मार्गों से भी कैलाश दर्शन हो सकता है किन्तु पुरानी प्रथानुसार ठीक परिक्रमा जौहार होकर जाने और व्यास होकर लौटने मे ही समझी जाती है।

इसलिये अपनी यात्रा की कथा आरंभ करने से पूर्व मुझे अपने अल्मोडा से अपरिचित पाठको को अल्मोड़ा तक पहुंचने के रेल मार्गों का बता देना असगत न होगा।

१—दक्षिण और पूर्व से आने वाले देश बन्धु ईस्ट इण्डियन रेलवे के बरेली जकशन से रुहेलखण्ड कमाऊ रेलवे लाइन द्वारा (छोटी लाइन) हलद्वानी या काठगोदाम पहुंच कर अल्मोडा पहाड का रास्ता पकड सकते हैं, या लखनऊ सिटी स्टेशन से गाड़ी मे बैठकर सीतापुर होते हुए भोजीपुरा से गाडी बदल कर, काठगोदाम पहुंच सकते हैं। ❀

२—पश्चिम मे आनेवालो को मुरादाबाद स्टेशन से छोटी लाइन द्वारा काशीपुर होकर रामनगर पहुंचने का सुभीता है। रामनगर पहाड की तराई मे आख़िरी स्टेशन है। यहां से अल्मोड़ा शहर पचास या बावन मील होगा।

३—जो यात्री अल्मोड़ा शहर नहीं देखना चाहते वे पीली-भीत से सीधे तनकपुर पहुंचकर पिठोरागढ़ होते हुए असकोट

❀ काठगोदाम अथवा हलद्वानी से यात्री लारी द्वारा रानी खेत होता हुआ अल्मोडा पहुच सक्ता है। आज कल मोटर और लारिया बहुत मिलती है। किराया सस्ता है। —लेखक।

जाये। असकोट से जौहार होकर कैलाश जी को सड़क जाती है।

मैने चूंकि अपनी यात्रा का आरम्भ अल्मोड़ा से किया था इसलिये मै काठगोदाम के रास्ते को सामने रखकर अपनी यात्रा का वर्णन करता हू। पाठक, ध्यान पूर्वक पढ़े—

पहला पड़ाव

काठगोदाम से अल्मोड़ा

बरेलीशहर स्टेशन से काठगोदाम आने वाली ट्रेन—एक सबेरे छः बजे और दूसरी रात के दस ग्यारह बजे—छूटती है। पहली दिन के बारह बजे के करीब काठगोदाम पहुंचा देती है और दूसरी सबेरे पांचबजे के करीब। यात्रियो को बरेली से काठगोदाम का टिकट लेना चाहिये। काठगोदाम मे मोटर और लारियाँ चलाने वाली कई कम्पनियाँ हैं, जो स्टेशन से अल्मोड़ा तक यात्रियो को बहुत आसानी से पहुंचा देती है। सारे मोटर का किराया गर्मी की ऋतु मे पचहत्तर रुपये देने पडते है और फी सवारी बीस या पचीस रुपये देने पड़ते है। लारी मे काठगोदाम से अल्मोड़ा तक अधिक से अधिक दस रुपये और कम से कम ४) रुपये फी सवारी लगती है। लारी वाले ग्राहक की सूरत देखकर अपने टके सीधे कर लेते है इसलिए उनके साथ बड़ी चैतन्यता से किराया ठीक करना चाहिये। काठगोदाम स्टेशन से अल्मोड़ा मोटर के रास्ते ८० मील है और काठगोदाम मे एक अच्छा हिन्दुस्तानी डाक-बङ्गला भी है, जहां यात्रियो को बड़ा आराम मिलता है। यदि काठगोदाम प्रातःकाल ७ बजे पहुचे तो उसी समय लारी मे बैठ कर रवाना होने से शाम को यात्री अल्मोड़ा पहुंच सकता है।

दिन के बारह बजे यदि काठगोदाम से लारी में चले तो रास्ते में रानीखेत रात काटनी पड़ती है। इसलिए अच्छा यह है कि काठगोदाम से प्रातःकाल लारी पर सवार हो ताकि सध्या को अल्मोडा पहुंच सके। रानी खेत अच्छी बडी छावनी है जहाँ गोरी पल्टने पहाड का मजा लूटने के लिए गर्मी के दिनो मे आ जाती हैं। असल मे सबसे अच्छा पैदल चलना है। जिसको पहाड का आनन्द लेना हो उसे लारी में अपना सामान लदवा कर अल्मोडा भेज देना चाहिये और अपने असबाब की रसीद लारी वाले से ले लेना उचित है। बोझ पहले भेज कर आप मजे मजे से पैदल चलिये, तभी पहाड की यात्रा का सुख मिल सकता है।

काठगोदाम से अल्मोडा ३७ मील है। रेलवे स्टेशन से दो मील चलकर पहाड की चढाई आरम्भ हो जाता है। १३ मील की चढाई है इसके बाद उतार शुरू हो जाता है। चार मील का उतार है। काठगोदाम से चला हुआ यात्री भीमताल होता हुआ शाम को रामगढ़ पहुच सकता है। भीमताल काठगोदाम से ८ मील पर है। यहा पर ठहर कर जल-पान कर लेना चाहिए। यहा खाने-पीने की चीजे सब मिलती है। अच्छा रमणीक स्थान है। रामगढ़ मे भी दुकाने है, सब खाद्य वस्तुएँ बिकती है। रामगढ़ मे रात को ठहरने के लिए दुकानदारो के पास प्रबन्ध हो सकता है, बगला भी है, स्कूल मे भी योग्य सज्जन ठहर सकते है। स्कूल डाक बगले से डेढ़ मील नीचे है, वहां भी हलवाई की दुकाने है। रामगढ़ से सबेरे चलकर शाम को पाच बजे या इससे पहले अल्मोडा अच्छी तरह पहुच सकते है। रास्ते मे दस मीलपर प्यूड़ा का पड़ाव है। यहां कुछ देर ठहरकर सुस्ताना ठीक होगा। यहा का जल बड़ा गुणकारी है। रामगढ़ से प्यूडा पहुचने मे रास्ता बहुत अच्छा है, सुन्दर सड़क है, दृश्य मनोहर है। केवल सवा मील की

कठिन चढ़ाई है। ग्यूड़ा से आगे पांच मील का उतार है। इसके बाद अल्मोड़ा पहाड़ की चढ़ाई शुरू होती है। यहां पर दो पहाड़ी नदियों का सगम है और पुल बधा है। अल्मोड़ा की साढ़े चार मील की चढाई चढ़ने पर शहर में पहुंच जाते है। अच्छा अब अल्मोड़े का वर्णन सुनिए।

कूर्माञ्चल की इस पर्वतमाला मे अल्मोड़ा सब मे बडा शहर है। इसकी आबादी दस ग्यारह हजार के लगभग है। यहां का जल-वायु अति नीरोग है इसलिए भारत के प्राय: सभी प्रान्तो के लोग यहां आते है। पहले तपेदिक के बीमार अल्मोड़ा मे अधिक आया करते थे, पर अब गवर्नमेंट ने ऐसे बीमारो के लिए भवाली मे बड़ा सुन्दर अस्पताल बना दिया है इसलिए तपे-दिक़ के रोगी अल्मोड़ा न जावे। जिन भाइयो को इन पर्वतो का आनन्द लेने के लिए यहां आना हो वे 'शक्ति' सम्पादक अल्मोड़ा से पत्रव्यवहार कर पहले स्थानादि के किराये का ठीक ठाक करले। बहुत से भोले भाले बन्धु यहां आकर बुरी तरह ठगे जाते है। उनको धूर्त मकान वाले दुगुणे तिगुणे किराये पर मकान देकर पहले किराया वसूल कर लेते है, पीछे से टूटी फूटी किसी वस्तु की मरम्मत नही करते। सारा किराया आरम्भ मे कभी न देना चाहिये। आधा दे दिया, आधा फिर महीने दो महीने बाद, अच्छी प्रकार मकान के गुण दोष समझ कर, देना उचित है।

संयुक्तप्रान्त के इस छोटे से शहर में शिक्षा का अधिक प्रचार है। बहुत से ग्रेजुएट, वकील, जज, पेन्शनर यहां पर मिलेंगे। कुशाग्रबुद्धि ब्राह्मणो की यहां कमी नही, पर मुझे बड़े दु:ख और सन्ताप के साथ कहना पड़ता है कि इनको बुद्धि और शिक्षा सब स्वार्थ मे खर्च होती है। नौकरियो के भूखे ये अपना सर्वस्व इसके लिए हारने को उद्यत रहते है। खुशामदी, मक्कार, चुगलखोर

और भीरु ऐसे लोगो की यहा भरमार है। पब्लिक कामो मे कोई दिलचस्पी नही लेता। जो कोई सेवा करने को खड़ा हो उसके रास्ते मे रोडे अटकाने को सर्वदा उद्यत रहते है; उसकी बुरी से बुरी शिकायते अधिकारियो के कानो तक पहुंचाने मे कभी नही चूकते।

इन शिक्षित—परन्तु अशिक्षितो से भी बदतर—लोगो की कृपा से यहा ईसाइयो का बड़ा जोर है। यहां के लोग स्वत्वाभिमान से ऐसे हीन है कि अपना निज का जातीय हाई स्कूल व कालेज न बनाकर ईसाइयो के कालेज के लिये हजारो रुपये का चन्दा देने को उद्यत है। अपना एक छोटा सा स्कूल था उसकी सहायता भी यह न कर सके पर ईसाइयो की सहायता के लिये यह रुपया जेब से निकालने का तैयार हो जाते है।

अल्मोडे को अपनी इस पतितावस्था मे थोड़ी बहुत आशा अपने नवयुवको से है। पिछले दस वर्षो से कुछ सुधार के चिन्ह दिखाई देने लगे है। यद्यपि नौकरी की कीच मे फँसे हुए बुड्ढे, नवयुवको को बहुत हानि पहुचा रहे है तो भी समय की जागृति के सामने इनकी कुछ पेश नही जाती। समय अपना प्रभाव इस सकुचित हृदय वाले नगर पर भी डालरहा है। झूठे आडम्बरो की नसे धीरे धीरे ढीली हो रही है। नवयुवको के उत्साह से यहां एक हिन्दी पुस्तकालय है, जिसकी सचालिका यहा की शुद्ध-साहित्य-समिति है। यदि यहां के स्वयभू नेता आपस का ईर्षा द्वेष छोड कर नवयुवको की सहायता करे तो इस शहर मे बहुत शीघ्र जागृति हो सकती है, पर उनको अपनी झूठी जोड तोड लगाने से फुरसत मिले तब न।

❀ ❀ ❀ ❀

इस अल्मोड़ा पर्वत पर मै बराबर आया करता था। पहले

वर्षो मे व्याख्यानो मे फंसा रहने के कारण मै कहीं जा आ न सका। इस वर्ष जून सन् १९१५ मे मैने अपने कैलाश दर्शन के पुराने सकल्प को पूरा करने का विचार किया। कोई खास तैयारी तो इसके लिये कर नही सका। थोडा सा सामान साथ लेकर अपनी इस विकट यात्रा को पूरा करने के लिये निकला।

पाठक महोदय! मेरे साथ आइये और इस यात्रा का आनद लीजिये।

दूसरा पड़ाव

कैलाश की यात्रा का प्रारम्भ

१५ जून को चलने का विचार था, परन्तु तैयारी मे कसर रह गयी, इसलिये रुक जाना पड़ा। बुधवार १६ जून को सवेरे चार बजे उठा। आकाश मेघो से आच्छादित था। शौचादि से निवृत्त होकर सामान बांधा। दो स्वेटर, एक सिर कान ढँकने का ऊनी टोप, दो गजी, मृग चर्म, दो ऊनी हलकी चद्दरे, एक बिछाने को कम्मल, गीता की पुस्तक, डायरी, दो पहनने की रेशमी चद्दरे, तीन कोपीन, चार रुमाल, एक तौलिया, चन्दन की माला, १७ रुपये, दो रुपये की दोअन्नी चौअन्नी* इतना सामान तथा हाथ मे कमन्डलु, छाता और लट्ठ लेकर मै तैयार हो गया। अल्माड़े मे मेरा स्थान शहर से दो मील के फासले पर है, इसलिये दो तीन सज्जन जो मुझे पहुंचाने के लिये शहर से आने वाले थे उनकी मुझे प्रतीक्षा करनी पड़ी। साढ़े पांच

---

*तिब्बत मे अंग्रेज़ी नोट और गिन्नी नही चलती। केवल रुपये दोअन्नी, चौअन्नी आदि चलते हैं। लेखक

बजे के करीब वे महाशय आ गये। एक ने मेरा बोझ उठालिया। परमात्मा का नाम लेकर मै यात्रा के लिये निकला।

अल्मोडे से कैलाश की ओर जाने मे पहले वागेश्वर आता है और वागेश्वर अल्मोडे से २६ मील की दूरी पर है। तीन मील तक तो हम लोग पांच जने थे। इसके बाद मैने शहर के तीन सज्जनो को लौटा दिया। मै और विद्यार्थी हरिदत्त दोनो वागेश्वर की ओर चले। हरिदत्त को सामान उठाने के लिये वागेश्वर तक साथ ले लिया था।

इधर के पहाड़ो पर चीड के वृक्ष ही अधिक होते है। जिधर दृष्टि दौड़ाइये, चीड़ ही चीड़। गवर्नमेंट को करोडो रुपये की आमदनी इन वृक्षो से होती है। प्रत्येक वृक्षके निम्न भाग के किसी स्थान की छाल प्रकट कर उसके नीचे एक मिट्टी का गिलास सा लगा देते है; पेड़ का तेल धीरे धीरे उसमे टपकता रहता है। इसीका तारर्पीन (Turpentine) बनाया जाता है। करीब-करीब सभी वृक्षो के नीचे ऐसे गिलास लगे हुये देखने मे आये।

पहाड़ी सड़क मे चढ़ाव उतार होता ही है, कही दो मील चढ़ाई तो तीन मील उतार। आठ आठ दस दस घर जहां बने हो वही गांव है। पहाडो के बीच चलते हुये यात्री को दूर से घर चमकते हुये दिखाई देते है। घर साफ सुथरे चूने से अच्छी प्रकार पुते हुये धूप मे भले बोध होते है। सीढ़ियो जैसे खेत, एक के ऊपर एक, अपनी हरियाली से आंखों को तृप्त करते है। ऊंचे ऊंचे पहाड़ो पर गाय, भैंस, बकरी चरती हुई दिखाई देती है।

१३ मील चलकर ताकुला पहुचे। दस बज चुके थे। रास्ते भर तो खूब ठण्डा रहा। यहां आते ही जोर से वर्षा होने लगी। ताकुला देवी के मन्दिर मे आज भण्डारा था। यह भण्डारा

हैजे को दूर भगाने के लिये किया गया था। हरिद्वार से लौटे हुये कुम्भ के यात्री हैज़ा साथ ले आये थे। उनके द्वारा इर्द गिर्द के पहाडी गावो मे बड़े जोर शोर से हैज़ा फैल रहा था, उसी को दूर भगाने के लिये यह यज्ञ किया गया था। वर्षा के कारण मै तो पहाडी के ऊपर एक क्षत्री के मकान मे चला गया। वहां जाकर खिचड़ी बनवा कर खाई। गांवके लोगों ने रसद पहुंचाई। मैने दाम देने चाहे पर 'साधु महात्मा' से दाम कौन ले। दोपहर को दो चार लोग आकर बैठ गये और अपना दुखडा कहने लगे। गवर्नमेन्ट के जङ्गल विभाग के सख्त नियमो के कारण ये ग्रामीण लोग बड़े दुखी थे। बेचारे कही कोई लकडी तक नही तोड़ सकते। गोचर भूमि को (Forest Reserve) का नाम देकर पशुओं की स्वतन्त्रता छीन ली गई है। एक बेचारा ग़रीब ब्राह्मण, जिसके गाय बैलो को बाघ मार गया था, महा दुःखी था। बिना शस्त्रो के ये बेचारे दीन हिंसक जन्तुओ का सामना नही कर सकते; बिना जङ्गल विभाग के अधिकारियो के जरनेली हुक्म के ये लोग हिंसक जन्तु को मारने के लिये जङ्गल मे नही घुस सकते। बेचारे अपना अपना दुखड़ा कह रहे थे। उनकी इस बेकसी को देख कर मुझे भारी दुःख हुआ।

तीसरा पड़ाव

ताकुला से बागेश्वर

वृहस्पतिवार १७ जून—रात कष्ट से कटी। मच्छरो ने सताया। सबेरे चार बजे उठकर चले। ताकुला छोटा सा गांव है; दो पहाडियो के मध्य घाटी मे है। गणनाथ नदी बीच मे

बहती है। यहां खेत सीढ़ियां ऐसे नहीं है। घाटी चौड़ी होने के कारण कुछ चौरसपन आ गया है। धान के खेत हरे भरे हो रहे थे। आज ताकुला से बागेश्वर जाने वाला एक और साथी मिल गया। वह बागेश्वर के डाकखाने में चिट्ठीरसां होकर जा रहा था। उसी के साथ बाते करते हुए चले। रास्ते मे स्थान स्थान पर पनचक्कियां देखने मे आई। इधर पनचक्कियो का अधिक प्रचार है। पहाड़ी नालो की कमी नही। वे ऊपर से नीचे आते हैं, इसलिये उनमे वेग भी होता है। उसी वेग की शक्ति से पनचक्की चलती है। आज भी दिन ठण्डा था। पहाडी दृश्य देखते हुए, पहाड़ी नालो की गड़गड़ सुनते हुए, आनन्द से जा रहे थे। कही नाले के किनारे किनारे जा रहे है, कही वृक्षो से घिरे हुए ठण्डे मार्ग से, कही दोनो तरफ लम्बे लम्बे चीड के वृक्षो की सरसर ध्वनि सुनाई देती है, कही बिलकुल नीचे की ओर उतर रहे है, कही थोडा सा चढाव है। दस बजे के करीब एक ऊंची चढाई के पास पहुंचे। यहां से डेढ़ मील की विकट चढ़ाई है। धीरे धीरे कई जगह दम लेते हुए पहाड़ के ऊपर पहुचे और उस चढ़ाई को तय किया। रास्ते मे पसीने से नहा गया। जब चढ़ाई खतम हुई, तब ठण्डे पानी की धारा मिली। वहाँ बैठकर दम लिया और जल पिया। ठण्डा बर्फानी जल क्या स्वाद देता था। वाह!

चढ़ाई ख़तम कर, प्यास बुझाकर, जब मै ऊपर पहुचा, तब एक बड़ा बगीचा देखने मे आया। उसकी दीवार के पत्थर पर बैठकर मै गाने लगा :—

छोड़ो न तुम धरम को, चाहे जान तन से निकले।
हो बात सत्य लेकिन, मीठे बचन से निकले॥
अग्नि का धर्म जब तक, रहता है उसमें कायम।
हाथी की क्या है शक्ती, जो पास होके निकले॥

फिर अपना धर्म तज कर, जब राख वह हो जावे।
चीटी निधड़क होकर, ऊपर से उसके निकले॥
है धर्म की यह महिमा, यदि इसको धार लो तुम।
शेर बबर की मानिन्द, शक्ती बदन से निकले॥
डर कर चलेगा वोही, डूबा गुनाहो मे जो।
थे ईश के जो प्यारे, वे सूर्य बन के निकले॥

मै गाने का आनन्द ले रहा था और विद्यार्थी हरिदत्त पीछे आ रहा था। उसके पास बोझ होने के कारण वह बहुत धीरे धीरे चलता था। डाक बाँटने वाले साथी को मैने बिदा कर दिया। हरिदत्त के आने पर हम दोनो साथ २ चले। अब उतार था। जल्दी २ बढ़े चले गये। खूब ठण्डा हो रहा था। चलते २ कोई अढ़ाई मील गये होगे कि एक पहाड़ी आदमी एक ओर से भागा हुआ आया और विनीतभावपूर्वक मुझसे बोला, "आज आपको हमारे मन्दिर मे निमंत्रण है।" भूख लगी हुई थी प्रेम का निमत्रण स्वीकार कर लिया। ऊपर उसके मन्दिर मे पहुंचे। वहां गोरखनाथ की धूनी जल रही थी। हवन का सब सामान जुटा था। छः सात आदमी बैठे थे। पुजारी लोग भी थे। मेरा परिचय पाकर वे बड़े प्रसन्न हुये। नाम तो उन्होने मेरा पहले से सुन रक्खा था। खैर, नहा धोकर हवन की तैयारी की। मैने हवन मे सहायता दी। कार्य समाप्त हुआ। मेरे विद्यार्थी ने भोजन बनाकर खिलाया।

यहां भी हैज़े को दूर भगाने के लिये यह सब कुछ किया गया था। वर्षा अधिक हो जाने के कारण मैने यही ठहरने का निश्चय कर लिया। एक प्रेमी बन्धु मुझे अपने घर मे लेगये। वहां जाकर आराम किया। चार बजे वर्षा बन्द हो जाने पर हरिदत्त को अल्मोड़ा वापिस भेज दिया। यहां से कुली का

प्रबन्ध हो गया था। रात को मन्दिर मे मेरा व्याख्यान हुआ। इर्द गिर्द के गॉवो के लोग इकट्ठे हुये। ख़ासा जमाव होगया। "धर्म क्या है ?" इस विषय पर व्याख्यान दिया। लोग बडे प्रसन्न हुये।

१८ जून शुक्रवार से २० जून रविवार तक—बोरा आठ दस घरो का ग्राम है। पहाड़ी ग्राम ऐसे ही होते हैं। यहां से वागेश्वर साढ़े तीन मील है। सवेरे सात बजे ग्रामवालो से बिदा होकर मै वागेश्वर की ओर चला। डेढ़ दो मील का कठिन उतार है। पहाड़ो पर दूर तक सिवाय चीड के लम्बे लम्बे वृत्तो के कुछ दिखाई नही देता। इन वृत्तो से गिरा हुआ घास, पहाड़ी सड़को को फिसलाऊ बना देता है। उनके ऊपरसे जूता बेतरह फिसलता है। ख़ैर।

उतार पूरा हुआ। चौड़ी घाटी मे पहुंचे। यहां मैदान है। सरयू नदी की घाटी आरम्भ हो जाती है। इसके किनारे किनारे चला। खेतो मे स्त्रियां काम कर रही थी। उनको देखता हुआ बढ़ा चला गया। यहां मच्छर अधिक था। आठ बजे के बाद वागेश्वर दीख पडा। गोमती और सरयू का यहा सङ्गम होता है। गोमती छोटे नाले के बराबर है। हां, बरसात मे बढ़ती होगी। इस पर पुल बधा है। पुल पार कर के वागेश्वर के बाज़ार मे पहुंच गया। मेरे प्रेमी, जो पहिले दिन सन्ध्या को वागेश्वर से दो मील पर मुझे लेने गये थे और निराश होकर लौटे थे, आज यहां बाजार मे मिले। उन्होने प्रेमपूर्वक "वागेश्वर सरस्वती पुस्तकालय" मे ले जाकर मुझे ठहराया।

यहा आकर मेरा प्रोग्राम बदल गया। अल्मोडा से मैने वागे-श्वर होकर अस्कोट के रास्ते जाने का निश्चय किया था। मान-

सरोवर जाने का वह सीधा मार्ग है। यहां बागेश्वर के लोगो ने कहा, कि जोहार के रास्ते जाना चाहिये, क्योंकि पूरी परिक्रमा तभी होगी जब पहले कैलाश दर्शन हो और पीछे से मानसरोवर मे स्नान किया जाये। 'एवमस्तु' कहकर मैंने स्वीकार कर लिया और जोहार की ओर जाने की तैयारियां करने लगा। जोहार का रास्ता बड़ा विकट है, यह मैंने पहले ही सुन रखा था। अपने अलमोड़े के मित्रो को प्रोग्राम परिवर्त्तन की सूचना दे दी। बागेश्वर के व्यापारियो ने जोहार के अपने भोटिये मित्रो को मेरी यात्रा की खबर भेज दी और अपनी शक्ति भर सेवा करने को लिख दिया।

अब लगे सामान जुटाने। लोग कहने लगे-"जोहार के रास्ते शाक तरकारी नही मिलती। रास्ता बहुत विकट है। मच्छर, डाँस, मक्खी बुरी तरह सताते है। जोंके रास्ता चलते जूते मे घुस जाती है। ऊंटाधरा, जयन्ती, और कुङ्गरी बिङ्गरी तीन बर्फानी पहाड़ो को लांघते समय पहाड़ी विष चढ़ जाता है, उलटी होने लगती है।" तरह-तरह की सूचनाए मिली। मैंने घुटनो तक एक जोड़ा काली जुराबो का लिया। साढ़े पांच सेर सूखे फलो—बादाम, किसमिस, छुहारा, और नारियल—की थैली तैयार करवायी; एक लम्बी पहाड़ी लकड़ी ली। खटाई आदि भी साथ बांधी। तीन दिन बागेश्वर मे रहे। तीन व्याख्यान दिये। बागेश्वर क्लब की नवयुवक मडली मेरे लिये सामान जुटाती रही।

पाठक! आइये, आपको बागेश्वर मे सरयू नदी का दृश्य दिखलाकर यहां की कुछ बाते बतलावें।

बागेश्वर

बागेश्वर में सरयू नदी का दृश्य

दोनो ओर दूर तक लम्बी, ऊ ची, हरी-हरी पहाडियों के बीच, चौरस घाटी मे आप अपने आपको खडा हुआ समझिये। उसी घाटी के बीच पत्थरो को रगडती हुई सरयू नदी बह रही है। पत्थरो की रगड की गडगडाहट की ध्वनि बराबर कान मे आ रही है। पिता हिमाचल की गोद मे निकल कर अपने सह चारियों के साथ टेढ़े मेढ़े चक्कर काटती हुई सरयू मस्तानी चाल से बागेश्वर मे पहुंचती है। यहां पश्चिम से आने वाली अपनी बहिन गोमती के स्वागत के लिये यह अपनी चाल धीमी कर बडे प्रेम से उसकी ओर निहारती है, फिर वेग से आगे बढ़कर भगिनी का मुख चूमती है।

अहा! क्या सुन्दर दृश्य है। सरयू के किनारे पश्चिम की ओर पीठ कर खडे होने से सामने निकट चण्डी पर्वत के दर्शन होते है। उसके ऊपर चण्डी महारानी का मन्दिर है। पीछे पश्चिम मे नील पर्वत अपनी छटा दिखलाता है। इस पर भगवान नीलेश्वर विराजमान है। पूर्व से भागीरथी की धारा आकर सरयू जी का चरण छूती है भागीरथी और सरयू मिल कर जहां गोमती से भेट करता है वहा संगम पर बाघनाथ जी का प्राचीन मन्दिर है, यहां मकर सक्रान्ति १३ जनवरी को बडा भारी मेला होता है। बागेश्वर सरयू जी के दोनो किनारो पर बसा है। दोनो किनारो पर आमने सामने दुकाने है। दो पुल बने है—एक गोमती पर दूसरा सरयू पर।

बागेश्वर मन्डी है। मेले पर यहां दूर दूर से लोग आते हैं।

तिब्बती चीजे—थुल्मे, चुटके, घोड़े, चँवर, मुश्क, पश्मीने, नीलम, सुहागा, नमक, बेत की चटाइयाँ, पिटारे और खालें—बिकने के लिये आती है। यहाँ से रानीखेत, गढ़वाल, अल्मोडा, शोर, अस्कोट, और कैलाश को रास्ते जाते है। बागेश्वर मे सर्दी अच्छी पडती है, पर बर्फ नही गिरता। गरमियो मे गरमी होती है पर लू नहीं चलती। साये मे ठण्डा रहता है। यहां का क्लब—"बाज़ार एसोसियेशन क्लब"—बीस वर्ष से है। इसके साथ हिन्दी का एक छोटा "सरस्वती पुस्तकालय" भी है। इसमे हिन्दी के समाचार-पत्र तथा पत्रिकाये आती है। नागरिको के उद्योग से 'विद्याप्रचारक' नामी रात्रि-पाठशाला भी खुली हुई है। श्री शिवप्रसाद चौधरी शिलाजीतवाले बड़े उत्साही सज्जन थे। क्लब और पाठशाला आपके उद्योग से स्थापित हुई थी। नवयुवक मडली भी अच्छी है। ईश्वर चाहेगा तो इन नवयुवको के द्वारा बागेश्वर मे शीघ्र विद्याप्रचार की जड़ जम जायेगी।

पुल के पास ऊचे पत्थर पर बैठकर मैंने सरयू जी की खूब बहार देखी। स्नान का बडा आनन्द आया। बागेश्वर मे तीन रोज़ रहा, सरयू जी का स्नान नही भूलेगा। अवधवासियो को चाहिये कि बागेश्वर मे जा कर सरयू स्नान का विचित्र आनन्द लूटे। इधर की छटा ही निराली है।

चौथा पड़ाव

कपकोट

जून २१ सोमवार—सवेरे छः बजे के बाद बागेश्वर से चला। मेरे प्रेमियो ने मेरा सामान—बिस्तरा और फलो की थैली—उठाने

के लिये कुली तलाश कर दिया था। मैंने सबसे "वन्दे" कहा। फिर छतरी, कमण्डलु और लम्बी लकडी उठा सडक पर हो लिया।

एक नवयुवक मुझे सात मील तक पहुंचाने के लिये साथ चल पडा। अब हम सरयू के किनारे किनारे चले। बागेश्वर से १८ मील मुझको सरयू घाटी हो कर जाना था। मनस्यारी होकर कैलाश जाने का यही रास्ता है। मार्ग के दृश्य देखते और ग्रामीणो के पहाडी आलाप सुनते हुये हम अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुंच गये। धूप चढ़ गई थी, इसलिये स्नान की ठानी। यहा सात मील पर एक बगला बना है। यहाँ बागेश्वर के एक महाजन की दुकान है। यही विश्राम करने का निश्चय किया। घण्टा भर सरयू जी मे स्नान किया। शीतल जल से धूप की गर्मी दूर होगई। जो नवयुवक मेरे साथ आया था, उसने भोजन तय्यार किया। भोजनोपरान्त तीन घटा विश्राम कर फिर चलने की ठानी। कुली को सब से पहले भोजन खिलाकर आगे रवाना कर दिया था। तीन बजे के करीब मै वहां से चला। यहां पर एक कनफटे नाथ और एक उदासी साधु का मेरा साथ हो गया। ये दोनो महाशय भी कैलाश जा रहे थे। कनफटे बाबा तो चरसी होने के कारण साथ नही चल सकते थे, हा, उदासी महाशय मेरे साथ हो लिये। नवयुवक को मैंने बागेश्वर वापिस भेज दिया।

घनघोर घटा छा गई। वर्षा होने लगी। सरयू जी का पहाडी राग सुनते जा रहे थे। सडक खराब है। कही नदी के किनारे किनारे, कही फासले पर होकर गई है। वर्षा से सडक और भी खराब हो गई है। भीगते भागते सात मील पूरे किये और कपकोट पहुंचे। यहां ग्रामीण भाइयो ने मेरा स्वागत किया।

सस्कृत पाठशाला के अध्यापक ने सस्कृत मे लिखा हुआ 'एड्रेस' दिया। मेरी इन भाइयो ने अच्छी खातिर की। सन्ध्या को ग्रामीण भाई इकट्ठे हुये। उनको मैने उपदेश दिया। शिक्षा के लाभ बतलाये।

रात को भोजन कर मै चौबारे मे लेट गया, पर मच्छरो की कृपा से नीद नही आई। चरसीनाथ और उदासी साधु के लिये भी खाने पीने का प्रबन्ध कर दिया गया था।

पांचवां पड़ाव

कपकोट से श्यामाधुरा

जून २२ मङ्गलवार—कपकोट से सवेरं दुग्धपान करके चला। दोनो साधु कार्यवशात् पीछे रह गये। कुछ सज्जन दूर तक पहुचाने के लिये साथ आये। सरयू के किनारे किनारे, प्रकृति माता के दृश्यो का आनन्द लेता हुआ, मै चला। कपकोट से तीन मील तक सरयू घाटी का दृश्य बडा ही मनोहर है। सरसब्ज पहाड़ियो पर गाय-बकरी चर रहे थे। किनारे किनारे जहाँ घाटी चौड़ी हो गई है, भूमि मखमली घास से लदी हुई बडी सुहावनी दीख पडती है। दोनो ओर ऊची ऊची पहाड़ियां सरयू जी की शोभा बढ़ाती है। नदी का पाट चौडा है, पर जल कम है, क्योकि अभी वर्षा आरम्भ नही हुई थी। आकाश निर्मल था।

आनन्द मे मग्न मै चला जा रहा था। सामने गाय भैंस रास्ते मे खड़ी थीं। उनके साथ मैले कुचैले कपड़े पहने हुए

चरवाहे भी थे। लाठी से मैंने अपने लिये रास्ता किया। गाय बहुत छोटी छोटी और चरवाहे भी कमजोर दुवले पतले--ऐसे सुन्दर, सुहावने जलवायु मे इनकी ऐसी दुर्दशा! गैया इधर की आध सेर तीन पाव दूध देती है और छोटी होती है। हिमालय तो वही है, उसकी नदियां भी वही है, परन्तु पहाडी मनुष्य और पशुओ पर अधःपतन ने पूरा प्रभाव डाला है। पुस्तको मे पढा करते थे कि पहाडी आदमी वीर, उत्साही और स्वतन्त्रता-प्रिय होते हैं, पर इधर के पहाड़ियो मे इन गुणो का सर्वथा अभाव है। सैकड़ो वर्षों के दासत्व ने इनका मनुष्यत्व नष्ट कर दिया है, दासता इनके चेहरो पर झलक रही है, बेगारी का बोझ ढोते ढोते इनका स्वत्वाभिमान नष्ट हो गया है। ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र सभी मे दासता के भयंकर दुर्गुण विद्यमान है। अल्मोड़ा से लेकर यहां तक पहाडी लोगो की यही दशा देखी; नीचावस्था (Degeneration) का पूरा राज्य पाया।

पर सरयू अपनी उसी पुरानी चाल से, अपने उसी यौवन मद मे, लडती झगडती जा रही है। उसको अपने काम से काम है। सड़क के किनारे किनारे, ठण्डे स्रोतो का जल यात्री की प्यास को दूर करता है। तीन मील पूरे हो गये, सरयू जी की घाटी छोडकर जोहार का रास्ता पकडा। यहां दो पथ हैं—एक तो पिण्डरो ग्लेशियर को जाता है और दूसरा कैलाश की ओर गया है। मै और मेरा कुली दाहिने रास्ते हो लिये। नाले के किनारे किनारे चले। यहां पर मेरे मन मे विचार उत्पन्न हुआ—"पानी सभ्यता प्रचार करने वाला बड़ा भारी इन्जीनियर है। पहाडो को काट कर रास्ता बनाने वाला और सभ्यता को फैलाने वाला जल है। कैसे कैसे पर्वतो को इसने काटा है, कहा की मिट्टी लाकर यह खेत बनाता है। दुर्गम्य हिमालय मे मार्ग

बनाना इसी का काम है।" नाले के किनारे किनारे सुन्दर सड़क बनी हुई है। बादल आ जाने से ठण्डा हो गया था। छोटे छोटे, दस पांच घरो के ग्राम कई देखने मे आये। जगह जगह हरे हरे धान लहलहा रहे थे। जहां थोडी सी भूमि मिली वही खेती कर लेते है; बेचारे पहाडी इसी पर गुजारा करते हैं।

मै आज जुराब पहन कर नहीं चला था, इसलिये मच्छरो ने कुछ सताया। यात्री को चाहिये कि कपकोट से जुराबे पहिर ले; जुराबे घुटनो तक हो। दो चार साथियो के साथ यात्रा करे तो अच्छा है। क्योकि आज कल यह रास्ता बहुत कम चलता है, कोई पथिक रास्ते मे नही मिलता, इसलिये उन बन्धुओ को जो नगर मे रहने वाले है ऐसे निर्जन पथ मे भय लगेगा। यद्यपि डर किसी जीव जन्तु का नही और न लूट खसूट ही का भय है, पर दृश्य बड़े बन्य है। 'एकान्त' इस शब्द की सार्थकता बोध होने लगती है और नास्तिक भी आस्तिक बननें की इच्छा करने लगता है।

नौ मील चलकर चढ़ाई मिली। धीरे धीरे, कदम कदम, आहिस्ता आहिस्ता चढ़ना शुरू किया। थोड़ी दूर चढ़ता, थक जाता। किसी प्रकार उन दो मीलो को पूरा किया। श्यामाधुरा के निकट पहुंचे। स्वागत के लिये दो सज्जन आगे से खड़े थे। बड़े प्रेम से ले गये और अपनी दुकान मे ले जाकर ठहराया; सेवा की। आह! वह मनुष्य कैसा भाग्यवान है, जिसका पडाव पूरा होने पर प्रेमी-सज्जन अगुवानी करते है, और मीठे मीठे शब्दो से उसकी थकावट दूर कर देते है। अमरीका मे जब मैंने २३०० मील की यात्रा की थी, तो चालीस मील पैदल चलकर जाता, मगर मंजिल पूरी होने पर न ठहरने का ठिकाना,

न खाने का प्रवन्ध, न पैसा पास। वे दिन कैसे कटे थे, कभी भूलने वाले नही।

डेढ़ घण्टे वाद उदासी साधु भी पहुच गया। न्हाये, धोये, पत्र लिखे। कुछ आराम किया, चरसीनाथ भी धीरे २ आ पहुचा। ये दोनो महाशय थे निरे मूर्ख, काला अक्षर भैस वरावर था। चरसीनाथ तो अवस्था मे वडे होने के कारण कुछ सभ्य भी था उसे कुछ सत्सङ्ग भी हो चुका था, पर उदासी साधु तो निरा गँवार पजावी जाट था। सिवाय खाने पीने की वात के दूसरी चर्चा न थी। मैने आज उसे देवनागरी वर्णमाला के पहले छ: अक्षर सिखाये। उसकी आवाज अच्छी मीठी थी, इसलिये मैने चाहा कि उसे कुछ देश हित सम्वन्धी भजन सिखाकर कुछ काम लिया जावे। पर उसकी स्मरण शक्ति वडी खराव थी, वह भजन कण्ठ नही कर सकता था। दो घण्टा सिर खपाकर हार कर मैने छोड दिया। क्या करता, थके हुए यात्री से पत्थर मे छेद नही हो सकता।

रात को अच्छी तरह नीद नही आई। जहां मैं सोया था, वहां बहुत से चूहे आकर कबड्डी खेलने लगे। उनको मैने बहुतेरा मना किया, पर भला वे मूसरचन्द कब मानने वाले थे।

छठा पड़ाव

श्यामाधुरा से तेजम

जून २३ बुधवार— खा पीकर चले। अलमोडा से वागेश्वर २६ मील, वागेश्वर से कपकोट १४ मील, कपकोट से श्यामाधुरा

११ मील—कुल ५१ मील आ चुके थे। आज हमको तेजम पड़ाव पर पहुंचना था। यह श्यामाधुरा से आठ मील के करीब है। खा पीकर १२ बजे के बाद मै और उदासी साधु चले। श्यामाधुरा के पोस्टमास्टर महाशय ने मेरा असबाब मनस्यारी पहुंचाने के लिये कुली का प्रबन्ध कर दिया। मनस्यारी यहां से तीसरा पडाव २९ मील पर है।

आध मील तक चढ़ाई है। यहां तक तो दो चार प्रेमी हमे छोडने आये। उनसे प्रेमपूर्वक बिदा होकर हम आगे बढ़े। थोडी दूर तक मैदान है। सडक मजे की है, बाते करते करते चले गये। आगे बेढब उतार है। सडक टूटी हुई, पत्थर रास्ते मे, मै दो बार गिरा, बच गया। यदि सडक से नीचे फिसल जाता तो रामगङ्गा मे ही जाकर पहुंचता। मालूम नही अल्मोड़ा के अधिकारीवर्ग क्यो आंखे मूदे पड़े हैं। ऐसी रद्दी सडक जहां रोज़ डाकवाला बेचारा आता जाता है, जहां जाड़े मे सैकडो हजारो पशु ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर जाते है, ऐसी बुरी सडक पर चलते हुये उन ग़रीब ग्रामीणो के दिलो मे अपने ज़िले के अधिकारियो के प्रति कैसे कैसे भाव उठते होगे। धिक्कार है उन मनुष्यो को, जो बड़ी जिम्मेदारी के ओहदे को ले तो लेते है, पर कर्त्तव्य पालने म ऐसे कच्चे है कि हज़ारो आत्माओ को उनकी असावधानी से कष्ट उठाना पडता है।

सामने रामगङ्गा चमक रही थी। बडी कठिनाई से उस रद्दी सडक को पूरा किया। आगे सड़क और भी टूटी हुई थी, इसलिये रामगङ्गा की बजरी बजरी चल कर पुल पार किया और नदी के दूसरे किनारे पहुंच गये। यहां से तेजम केवल मील भर रह जाता है। विचार किया कि रामगङ्गा के स्वच्छ

जल मे स्नान कर ले। चरसीनाथ भी आ गये थे। तीनो ने रामगगा मे खूब स्नान किया। रामगगा का प्राकृतिक दृश्य यहां बड़ा विकट है। बडा पाट है और दोनो ओर बडे ऊंचे ऊंचे पहाड है। जब वर्षा मे रामगगा चढ़ती है तो पहाड टूट टूट कर वहे चले आते है। उस समय नदी का रूप बडा विकराल हो जाता होगा। खैर, स्नान कर उष्णता मिटाई और चले। तेजम के पास एक दूसरी छोटी नदी रामगगा मे आकर मिली है। उसका पुज दो लम्बे लकडी के लट्ठे रखकर वनाया गया है। पार करते समय बडी सावधानी से चलना पडता है। उसको पारकर तेजम पहुंचे। यहा एक ही दुकानदार है, उसके घर जाकर डेरा किया। असबाब उसके यहां छोडकर मै रामगंगा ॐ के साथ बाते करने के लिये चला। उदासी साधु भी मेरे साथ हो लिया। रामगगा के वीच एक ऊंचे पत्थर पर मै बैठ गया। उदासी साधु दूसरी जगह फासले पर जा बैठा। क्या क्या भाव मेरे हृदय मे उठे।

जल की तरगे मेरे पत्थर के इर्द गिर्द होकर जा रही थी। रामगङ्गा यहा पहाड के बिल्कुल नीचे होकर बहती है और पाट जरा छोटा है। बड़े बडे ढोके पत्थर उसकी धार के वीच मे पडे हैं, मानो उसको जाने से रोकते है। वे कहते है—"मत जाओ प्यारी मत जाओ।" वह क्या अठखेलिया करती है। उनके साथ आलिङ्गन करके नाच रही है। उनके गले मे अपनी दोनो भुजाएं डाल किस प्रेम से विदा चाहती है। जिस प्रसन्नता से वह जा रही है, ऐसा मालूम होता है कि उसको अपने निर्दिष्ट स्थान

ॐ यह रामगङ्गा सरयू की सहायक नदी है। मुरादाबादवाली बड़ी रामगङ्गा नहीं—लेखक

का हाल मालूम है। सुनो सुनो, विदा होते समय क्या कहती है—"मैके जाती हूं, मैके। बहिन सरयू से मिलने जाती हूं—" क्यो न हो इसीलिये तो ऐसी प्रसन्न है। ससुराल मे पर्दे के अन्दर बन्द पड़ी रही—न कही जा सके, न आ सके—शरीर की लाली सब उड़ गई, चेहरा सफेद पड गया। अब मैके जाकर खा पीकर खूब हृष्ट पुष्ट हो जायगी। हां, इसीलिये तो इतनी प्रसन्न है। बड़े बड़े पत्थर तो इसका रास्ता रोक रहे है, उसके जाने से अप्रसन्न है, मगर वह देखो, पहाड़ी वृक्ष लताएं किस प्रेम से उसको आशीर्वाद दे रही है; कैसे झुक झुक कर वे अपना सन्देशा उसको कह रही हैं। वे कहती है—

"जा गङ्गे! जा। हमारे मैदान के भाइयो को हमारा कुशल मङ्गल कह देना।"

❀ ❀ ❀ ❀

सन्ध्या हो गई। मै लौट आया। आकर भोजन किया। दुकानदार ब्राह्मण था, उसने तीनो का खाना बना दिया। खाकर सो रहे। रात को वर्षा हुई।

मेरी यात्रा का पहला खण्ड पूरा होता है। अल्मोड़े से तेजम तक हिन्दू सभ्यता और आर्य्य रङ्गरूप का प्रसार है, अब आगे मगोल रङ्गरूप देखने मे आएगा। तेजम से आगे 'भोट' का इलाका आरम्भ होता है, इसलिये दूसरे खण्ड को आरम्भ करने से पहिले हमे एकबार पीछे की ओर दृष्टि डालनी चाहिये। बरेली से काठगोदाम या हलद्वानी तक तो रेल मे, इसके बाद भीमताल, रामगढ़, प्यूड़ा, अल्मोडा, ताकुला, बागेश्वर, कपकोट, श्यामाधुरा और तेजम, यहां तक हम पहुंचे है। रेल का स्टेशन (काठगोदाम) ९५ मील पर है और अल्मोड़े से हम ५८ मील

दूर आगये है। यहां से आगे जोहार शुरू होता है। अब तक हम अल्मोडे के उस भाग मे थे, जहां भीरु दुकानदार, कुटिलनीतिज्ञ नौकरी पेशा ब्राह्मण और दुर्बल किसानो की वस्ती है। अब इस के आगे हम उद्योगी, साहसी, व्यवसाई तथा पोढ़े शरीर वाले, परन्तु शिक्षाहीन, भोटिओ की भूमि मे पैर धरेंगे। पर्वत निवासियो मे जो गुण होने चाहिये वे अभी तक हमारे देखने मे नही आये थे। मैदान से आने वाला यात्री पहाड मे चोरी का अभाव अवश्य पाता है, परन्तु पहाडी नौकर बहुत कम ईमानदार मिलते है। इसका बडा भारी कारण उनकी निर्धनता है। यद्यपि साधारण दृष्टि के मनुष्य को इधर पहाड मे निर्धनता बोध न होगी क्योकि यहा के ग्रामीणो के मकान साफ सुथरे, चूने से पुते हुए, पत्थरो से छाये हुए होते है और मैदान के किसानो के घर मिट्टी के तथा घास फूस से छाये हुए होते है, पर उसका एक मात्र कारण यहां पहाड मे पत्थरो की अधिकता है। पहाड के ग्रामीण भी मोटा अन्न खाकर बडी कठिनाई से अपने दिन काटते है। जगल विभाग के कडे कानूनो की वजह से इनके पशु भूखो मरते है और लकडी की इन्हे बडी दिक्कत हो गई है।

यहां तक हमने हिमालय का कोमल और मृदु जलवायु देखा है। हम लोग छः हजार, साढे छ हजार फीट तक ऊपर उठे होगे। ये कमाऊँ की पहाडियां कहलाती है, अब इसके आगे हिमालय के शाही द्वार मे घुसना होगा। जल, वायु, दृश्य, निवासी—सब बदल जायेगे।

पाठक! आइये भारत के द्वारपाल के श्वेत भवन मे प्रवेश करे। अब तक तो इसका नाम ही सुना करते थे, अब तक तो इसके यश के भजन ही गाया करते थे, आइये अब इसके दर्शन कर इसके मुख से अपनी प्राचीन कीर्ति-कथा श्रवण करे।

द्वितीय खण्ड

जोहार

अल्मोडा जिले मे तेजम के पास, छोटी रामगङ्गा पार करने के बाद, जोहार परगना शुरू हो जाता है। इसके तीन भाग है—मल्ला जोहार, गोरीफाट और तल्ला देश। गिरगांव से मनस्यारी तक गोरी-फाट और मनस्यारी से मीलम तक मल्ला जोहार है। इस परगने मे पश्चिमी भोटिया लोग बसते है। भोट का इलाका बडा है। उसमे चौदान्स, व्यास, दारमा, जोहार और गढ़वाल के भोटिये सब शामिल है। जोहार के पश्चिम गढवाल जिले के नेती और माना घाटो के पास रहने वाले भोटिये भी पश्चिमी भोटिये कहलाते है। जोहार के भोटिओ को शोका कहते है और मानघाटे के भोटिये मारचा कहलाते है। शोका और मारचा भोटियों मे शादी विवाह होते है। जोहारी लोग देखने मे जापानी, चीनियो की तरह होते हैं। ऐसा मालूम होता है कि किसी काल मे इधर चीनियो का राज्य था। चीनी औरतो के साथ हमारे लोगो का सम्बन्ध होने से उनकी सन्तान मगोल आकृति की हो गई है। अब भी भोटिया व्यापारी तिब्बती औरतो के साथ सम्बन्ध करने मे आगा पीछा नहीं करते। तिब्बतिओ के साथ इनका चाय पानी होता है। इनके नाम सब हिन्दू ढङ्ग के है और अधिक नाम क्षत्रियो की तरह हैं। तेजम से नीचे के हिन्दू भोटियो के हाथ का नही खाते; उनकी बडी छूत मानते है। कारण यह देते है कि हूण देश अर्थात् तिब्बत हिमालय पार है। वहां जाने से मनुष्य धर्म खो देता है और भोटिए लोग

तिब्बतियो के हाथ का खाते पीते हैं, इसलिये ऐसा नियम है। भोटिये लोग, यद्यपि नाम क्षत्रियो जैसे रखते हैं, मगर जनेऊ नहीं पहनते। कहते है कि उसके नियमो की पावन्दी नही हो सकती। नैपाली क्षत्री भी तिब्बत मे व्यापार करने जाते हैं। वे जनेऊ पहनते है, इसलिए तिब्बत से लौट कर उनको प्रायश्चित करना पडता है।

जोहारी लोग बहुत ज्यादा हमारे निकट है। वे हिन्दू रस्मो रिवाज का भी थोडा बहुत पालन करते है। उनमे धीरे धीरे शिक्षा का प्रचार भी हो रहा है। वे अपने आपको अपने पूर्वजो के निकट लाने का उद्योग कर रहे है। ब्राह्मणो मे सस्कारादि भी कराने लगे है। वे अपने आपको "रावत" कहते है। जब कोई मर जाता है तो उसकी अस्थिया मानसरोवर मे डालने जाते है। तिब्बती देवताओ की पुजा ने भी अभी तक इनका पीछा नही छोड़ा। इनमे छोटी जाति के लोग डूमड़े कहलाते है। वे बढई, लुहार, दर्जी, मोची तथा ढोली आदि का पेशा करते है। रावत लोग डूमडो के हाथ का नहीं खाते। अच्छा, अब इनके रहन सहन की बात सुनिये।

जोहारी लोग तीन जगह घर बनाते है। जून, जौलाई, अगस्त और सेप्टेम्बर मे तो ये लोग मीलम (मल्लाजोहार) मे रहते है। मल्लाजोहार बहुत ठण्डा है। मीलम १२५०० फीट की ऊचाई पर है। जाडो मे मल्लाजोहार बर्फ से ढक जाता है। जब जाड़ा पड़ने लगता है तो जोहारी लोग अपने बाल बच्चो, भेड़ बकरी तथा झब्बू (एक प्रकार का बैल) को लेकर नीचे मनस्यारी मे आजाते है। मनस्यारी मे अक्टूबर और नवम्बर दो महीने ठहरते हैं। जब यहा अधिक शात पडने लगता

है तो नीचे तेजम मे रामगगा के किनारे चले आते है। यहां दिसम्बर, जनवरी, फरवरी और मार्च के शुरू तक ठहरते है। फिर तेजम से मनस्यारी चले जाते है और वहां अप्रैल और मई तक रहते है। तेजम मे आकर वे कुछ दिन ठहर कर नीचे कानपुर, बम्बई, कलकत्ता मे माल लेने चले जाते है। वहां से महीने डेढ़ महीने मे लौटते है। मनस्यारी मे जाकर अपने तिब्बती सफर की तय्यारियां करते है। जून के महीने मे अपना सारा लटर पटर लेकर पहाडी दुर्गम पथ को पार कर, वे लोग मीलम पहुंचते है। मीलम से जौलाई के आरम्भ होते ही हज़ारो बकरियो, झब्बू, भेड़ें, अनाज और माल से लदे हुये, १८३०० फीट ऊँचे भयकर घाटे (Pass) को पार कर तिब्बत मे जाते है, और वहां हुणिओ (तिब्बती लोगो) के साथ व्यापार कर, अनाज और कपड़े लत्ते के बदले, ऊन, सुहागा, चँवर, पश्मीने, चुटके आदि माल लेकर लौट आते है। कैसा कठिन मार्ग है! उनका व्यापार किस प्रकार होता है, इन सब बातो का सविस्तर ब्योरा मेरी यात्रा मे आगे चल कर मिलेगा। डेढ़ दो लाख का व्यापार अकेले ऊंटाधुरा घाटे द्वारा जोहार के लोग करते है। रास्ता ऐसा बिकट है कि एक बार हिमालय पार से लौटकर फिर कोई उधर का नाम न ले, परन्तु ये लोग हरसाल जान हथेली पर रख कर तिब्बत जाते है और अपने इधर का माल उधर पहुचाते है। उनके पुरुषार्थ की जितनी प्रशसा की जाय, कम है।

सहृदय पाठक, मैंने भूमिका के तौर पर आपको जोहार का परिचय कराया है। अब आगे मेरी यात्रा मे आप जोहार की सैर करेंगे, जल प्रपात देखेंगे; गोरी नदी के मनोहर दृश्यों का

आनन्द लूटेंगे, मीलम में दस बारह दिन रहेंगे, ग्लेशियरों पर घूमेंगे, देश सेवक भारत-द्वारपाल हिमालय से मुलाकात करेंगे। कहां तक लिखूं, यह विचित्र यात्रा है।

सातवां पड़ाव

भोट में प्रवेश

२४ जून बृहस्पतिवार–सवेरे पांच बजे उठे। वर्षा हो रही थी। छतरियां तान कर चल पड़े। तेजम के पास जो नदी रामगंगा में मिलती है उसको जाकुला कहते हैं। इसका कठिन पुल पार कर, इसके किनारे किनारे, ऊपर पहाड़ पर चढ़े। मखमल जैसी हरियाली से लदे हुये दो पहाड़ों के बीच यह जाकुला नदी बहती है। घाटी का रास्ता तंग है, इसलिये पहाड़ी दृश्यों का स्वरूप बड़ा वन्य है। स्थान स्थान पर, ऊंची चौड़ी पहाड़ी भूमि पर भोटिओं की झोपड़ियाँ बनी हैं। बादल घाटी में बड़ी मौज से क्रीडा कर रहे थे, जिधर का मौका पाते, उधर ही उलट पड़ते थे। सामने जल प्रपात दिखाई दिया। श्वेत सूत के तागे की तरह जल की धारा पहाड़ पर से वक्र गति से नीचे आ रही थी। क्या ही नैसर्गिक दृश्य था।

चलते चलते एक पहाड़ी नाले के किनारे पहुंचे। चरसीनाथ तो पीछे था, उदासी साधु मेरे साथ था। उस नाले के किनारे हम दोनों ने बैठकर हाथ मुंह धोया। यहां एक जोंक मेरे पांव को चिमट गई। उसको छुड़ाया; खून बहने लगा, पाओं को धो धो ठीक किया। इधर बहुत जोंकें हैं, यात्री को अपने पाओं में लम्बी जुराबें पहन लेनी चाहिये। फिर चल पड़े।

थोड़ी दूर गये कि बादल फट गया। स्थान स्थान पर ग्रामीण लोग हल चलाते हुए दिखाई दिए। थोडी थोड़ी भूमि से फायदा उठाने का उद्योग किया जाता है। पहाड़ी घास बड़ा ही सुन्दर मालूम होता है। अहा! यह दृश्य वर्णन करने के लिये नही; ये तो देखने लायक है।

अब चढ़ाई आरम्भ हो गई। हमको आज गिरगाव पहुंचना था। अभी मुश्किल से मील भर गये होंगे कि ऊंचे, दूर, एक बड़ा रमणीक झरना चमकता हुआ दिखाई दिया। यहां मैदान सा आ गया था। इधर उधर दृष्टि दौड़ाने से चारो ओर ऊची पहाड़ियां मानो दीवारो की मानिन्द खड़ी बोध होती थी। मेरी निगाह उस जलप्रपात की ओर लगी हुई थी। कुछ मामूली चढ़ाई चढ़ने पर एक पुल दिखाई दिया। उदासी साधु तो दूसरे किनारे पर स्नान के लिये बैठ गया और मै आगे बढ़ा। मैंने बिचार किया कि गिरगांव पहुंच कर स्नान करूंगा और वहीं उस झरने को भी देखूगा। मगर कहां! भूख सख्त लगी हुई थी और खाने को कुछ पास मे था नही। दो मील से ज्यादा चढ़ाई चढ़ने पर गिरगांव की झोपड़ियां दिखाई दीं। गिरगांव क्या था? छीः! छीः!! छीः!!! घास फूस की पन्द्रह बीस झोपड़ियां। अब क्या किया जाता। उदासी भी आ पहुंचा था। बड़ी मिन्नत खुशामद से पांच रोटियां मिली और तीन पाव छाछ। छाछ तो मै पिया नही करता, सो मेरे हिस्से मे अढ़ाई रोटियां ही आई। उनको खाकर मैंने सेर भर जल पिया, तब कही होश ठिकाने आया। यात्री को थोड़ा सा खाना चलते समय ज़रूर साथ रखना चाहिये। मैने बड़ी भूल की थी जिसकी काफी सजा मुझको मिली। मेरा असबाब श्यामाधुरा मे रह

गया था। उसी मे खाने का सामान भी था। कुली अभी आया नही था, इसलिये यह सब कष्ट हुआ।

बारह बज चुके थे। मनस्यारी गिरगाव मे बारह मील है। हमलोग दस ग्यारह मील चल चुके थे। गिरगाव मे रात का ठहरने का कोई स्थान नही था इसलिये वहां से चलना ही उचित समझा। दिल कड़ा कर चल पडे। थोडी दूर चलकर विकट चढाई शुरू हो गई। जो अढ़ाई रोटी खाई थी, वे सब स्वाहा हो गई, पेशाब जो आया वह मानो रक्त था। लाल सुरख यह क्या ? मैने सोचा कि अब क्या करना चाहिये। बढ़े चले गये। बहुत ऊचे आगये थे, बादलो की धुन्ध मे छिप गये। यहां बडे बडे काले मुह वाले लगूर इधर उधर वृक्षो पर किलकारिया मार रहे थे। भूख ने बड़ा जोर बांधा। जब चढ़ाई खतम हुई तो चित्त ठिकाने आया। यहा दो चार मिनट बैठ कर सुस्ता लिया। आकाश बिलकुल साफ था। चढाई खतम होने पर बहुत सी झन्डिया देखने मे आई। भोटिआ लोग चढ़ाई खतम होने पर या पडाव के निकट, ऐसी ऐसी झन्डिया टाग देते हैं। रङ्ग बिरंगे कपडो के टुकडे, वृक्षो की शाखाओ या पत्थरो से बाध देते है, इससे यात्री को धीरज हो जाता है।

अब उतार आरम्भ हुआ। घना जगल स्थान स्थान पर नाले, सुन्दर झरने, एक से एक बढिया, क्या कहना है। अभी हमे तीन चार मील जाना था। मुझे बेतरह भूख लगी हुई थी। एक पहाडी किसान अपनी स्त्री के साथ आ रहा था। मैने उससे सत्तू मांगा। उसकी दयावती स्त्री ने फौरन तीन चार मुट्ठी सत्तू और दो आलू बुखारे के फल हमे दिये। मैने जन्म से कभी सत्तू नही खाये थे। उसे आज चखा, इसीके द्वारा लाखो भारत

वासी पेट की ज्वाला बुझाते है। धन्य मेरे भाग्य ! जो मुझे भी अपने देश के निर्धन बच्चों का खाना नसीब हुआ। धारे पर बैठकर उसको खाया; क्या आनन्द आया। वाहरी भूख, सच्चा आनन्द तो भोजन का तेरे ही अन्दर है। पेट को कुछ शान्त कर फिर बढ़े। आधमील की और बिकट चढ़ाई पड़ी। सड़क महा रद्दी ! झरनो तथा नालो का पानी सड़क पर बह रहा था। दूर तक सड़क भीगी हुई मिली; मच्छर और मक्खियो की भरमार है। अब बेढब उतार आरम्भ हुआ। बीच बीच मे पचाचूली की बर्फानी चोटियां भी दीख पड़ती थी। किसी प्रकार चलते चलते, टूटे फूटे पत्थरो पर लुढ़कते पुढ़कते, सड़क को ऐसी गिरी दशा मे रखने वाले अधिकारियो को कोसते हुए बढ़े चले गये। मनस्यारी आगई। छः बजने वाले थे। सड़क पर कुछ लोग बड़े प्रेम से मिले। उनका मै हृदय से धन्यवाद करता हू। उन्होने मुझ थके हारे के स्नान का प्रबन्ध किया। ठण्डे शीतल जल से बाहिर खुले मे स्नान किया; बाद मे घर के अन्दर गये। मेरे प्रेमियो ने एक कमरे मे मुझे ठहराया; उदासी को नीचे स्थान मिला। सामने पचाचूली की चोटियां दिखाई देती थी। मैने उनको प्रणाम किया। आज हिमालय के पूर्वीद्वार के कगूरो के दर्शन अच्छी प्रकार हुए। रात को दाल रोटी खाकर सो रहे।

२५ जून शुक्रवार—आज दिन भर आराम किया। थोड़ा समय वार्तालाप मे खर्च किया। शिक्षा सम्बन्धी उपदेश कुछ भाइयो को दिया। यहा के लोग स्नान नही करते, इसलिये उनके कपड़ो मे भी बहुत जुए होती है। मैने इनसे कम्बल लेकर ओढ़ा, मेरे कपड़ो में भी सरसर जूए चलने लगी। दोपहर के बाद कुली मेरा असबाब ले आया, इसलिये अपने कपड़े झाड़झूड़, ठीककर मैने अपनी चद्दर ओढ़ी। यहां बहुत अधिक सरदी

नही। लोगो की पोशाक विचित्र है। एक लम्बा लबादा सा घुटनो से नीचे तक होता है, उस पर मध्य मे पटका लपेटते है। कपड़े मैले कुचैले होते है। जो थोड़ा बहुत पढ़े लिखे है, उन्होने अंग्रेजी ढग के कोट पहिनने शुरू किये है। बाकी सब लबादा, पाजामा, पटका और टोपी पहिनते है। लबादे के नीचे गरम कुरते, फतूई आदि पहिन लेते है। जिस किसी को देखो, वही सूत कात रहा है। तकली हाथ मे लिये हुये उस को घुमा घुमाकर ऊनी सूत कातते रहते है, छोटे से बड़े तक का दिन भर यही काम है। बात करते जायेगे और कातना भी जारी रहेगा। सबके चेहरे मगोलियन है, कोई कोई देखने मे खूब सूरत भी होते हैं। यहां मक्खी मच्छरो की बहुतायत है। मै तो घर के अन्दर ठहरा हुआ था, इस कारण कष्ट कम हुआ। जो लोग पहाड़ी धर्मशालाओ मे ठहरते है, उनको बड़ा कष्ट होता है। पहाड़ी धर्मशालाये बड़ी गन्दी होती है। प्रायः साधु लोग गुफाओ मे ठहरते है। गुफाये इधर जगह जगह होती हैं। प्रकृति माता दयाकर अपने बच्चो के ठहरने के लिये ये सब सामान कर देती है।

आज रात को उस उदासी साधु से कुछ बिगड़ गई। मेरा रुमाल, जिसमे कुछ नकदी बधी थी, बिस्तरे पर से किसी ने उठा लिया। उस रूमाल को मैने उदासी महाशय के सामने रक्खा था। अपना शक होजाने के कारण मैने उस भले मानस से कहा कि ऊपर गुफा मे चरसीनाथ के पास जाकर ठहर जाय। उसे बुरा लगा। वह बुड़बुडाता हुआ चला गया।

२६ जून शनिवार—आज भी आराम किया। थोडा बाहर घूमने गए। मनस्यारी बेढगा सा ग्राम है। यहाँ के पशुओ

की खाल पर बड़े २ बाल होते है। यहां मैंने पहिली बार झब्बू देखा। झब्बू पहाड़ी गाय और तिब्बती सांड़ (Yak) की सन्तति है। इसकी दुम चवर गाय की तरह होती है। शरीर पर भी बाल होते है। यह लद्दू जानवर इन बर्फानी पहाड़ो मे बडा काम देता है। बेचारा बड़ा सीधा और डरपोक जानवर है। यहा की स्त्रियां जापानी स्त्रियो की तरह बच्चो को पीठ पर लादे लादे काम करती है। कल चलने का निश्चय होगया।

आठवां पड़ाव

मनस्यारी से बागड्त्यार

२७ जून रविवार—मनस्यारी (गोरीफाट) कई एक ग्रामो के समूह का नाम है। वहां जोहार भर का डाकघर है। पाठशाला भी है। जोहारियो के ऊपर नीचे जाने का यह अड्डा है। यहां से आज सबेरे मै अकेला चला। मेरा असबाब मनस्यारी के एक सज्जन के पास था। वे अपनी भेड़ बकरियो के साथ पीछे २ आ रहे थे। दो मील के उतार के बाद मै नीचे पोस्टआफिस के पास पहुंचा। यहां कुछ देर ठहर कर आगे बढ़ा। उदासी और चरसीनाथ भी आ पहुंचे थे। हम लोग तीनो बढ़े चले गये। बकरियो वाले धीरे धीरे आ रहे थे। अब रास्ता गोरी नदी के किनारे किनारे जाने का था। गोरी नदी की उछल कूद देखने लायक थी। पहाड़ो से भागी चली आरही थी। ज्यो २ आगे बढ़ते जाते थे, गोरी नदी का रूप भयावना होता जाता था। इसने पिता हिमालय से लड़झगड़ कर दुर्गम पर्वतो मे से रास्ता काटा है। पहाड़ी सड़क ख़राब है। कहीं कही तो निहायत तंग, जहां

से केवल एक मनुष्य मुश्किल से गुजर सके और यदि कही पांव रपटे तो नीचे गोरी के काले पेट मे समा जाय। बेढब उतार चढ़ाव है। पत्थरो की तङ्ग सीढ़ियां यात्री का नाक मे दम करती है। सैकड़ो सीढ़ियां चढकर ऊपर जाना, फिर सैकड़ो सीढ़ियो का उतार, सिर घुमा देता है। सडक बेतरह खराब है। मालूम होता है जैसे इधर किसी सभ्य गवर्नमेंट का राज्य नही है।

मै अकेला आगे आगे जा रहा था। साथी सब पीछे धीरे धीरे आ रहे थे। एक स्थान पर पहाड़ी नाले के पास चट्टान पर शौच के लिये जो ऊपर चढ़ा, तो एक प्रकार के वन्य पौधे के पत्तो से मेरी टांगे छूगई। जीः! मानो बिच्छू काट गया। बड़ी जलन होने लगी। यह बिच्छू घास कहलाता है। पहाडो मे यह बहुत होता है। सूखने पर इसके रेशो की रस्सिया बनाई जाती है। हरी हरी पत्तियो का शाक भी लोग खाते हैं। कई जलप्रपात देखने मे आए। पहाड़ी नाले गोरी की सहायता कर उसका अभिमान बढ़ा रहे थे। गोरी का रग तो श्वेत है, पर पेट की बड़ी काली है। इसमे बकरी या झब्बू गिर जाय तो बस गया। क्रोध से जली हुई जाती है, मानो घर वालो ने पीट पाट कर निकाल दिया हो। पुलो को तोड मरोड़ कर फेकना, पत्थरो को चकनाचूर कर देना, बकरी, भेड और झब्बू को डकार जाना, ये इसकी करतूते है। खूब लडती, झगडती और गालियां देती जा रही है। सडक पर चलने वाले यात्री की छाती धक धक करने लगती है। ऐसे भयानक मार्ग से ये जोहारी हर साल कैसे जाते होगे? यही सोचता हुआ मै जा रहा था। परन्तु दृश्य बड़े मनोहर है। एक जगह गोरी ऊपर से नीचे कूदी है। वहां ऊपर चट्टानो की दरारो और सुरक्षित

स्थानो पर मधुमक्खियो के सैकड़ो छत्ते देखने मे आये। इन श्रमजीवी मक्खियो ने कैसा स्थान ढूंढ़ा है। मनुष्य जहां आध घटा ठहरता हुआ डरने लगे; रात को जहां वीर मनुष्य भी डेरा करने से हिचकिचाये; उस बन्य स्थान मे इन्होंने अपने घर बनाये है। न जाने कब से इनकी बस्ती यहां पर है। ईश्वर की माया विचित्र है।

१२ बजे के करीब एक खुले स्थान पर पहुंचे। गोरी नदी के किनारे पर यहां कुछ चौरस जमीन है। इर्द गिर्द दोनो ओर ऊँचे ऊँचे पहाड़ है। नदी ने जहां जहां पर्वत को काटा है, उसके चिन्ह देखने मे आते है। पहले गोरी इस चौरस भूमि की ओर बहती थी और इस घाटी के बीच मे से जाने का मार्ग था। भोटिए लोग ऊपर ऊपर पहाड़ों की चोटियो के निकट तक पहुंच कर फिर भयानक उतार को पूरा कर, तब पगडंडी पकड़ते थे। बहुत ही दुर्गम पथ था। मनस्यारी के एक परोपकारी सज्जन ने अपने पास से रुपया खर्च कर बाँध बंधवा कर नदी को एक ओर करवा दिया है। अब बाये किनारे की ओर भूमि निकल आई है, जहां व्यापारी आकर दम लेते है और भोजनादि बनाते हैं। जो प्रेमी मेरे साथ था, उसने मेरे लिये रोटी बना दी। नमक के साथ सूखी रोटी खाकर ठण्डा जल पिया और ईश्वर को धन्यवाद दिया। मुझे बैठा हुआ देख बहुत से डूमड़े मेरे इर्द गिर्द आकर खड़े हो गये। ये लोग सलाम करते हैं। मैने उनको समझाया कि आप लोग राम राम किया करे, सलाम हमारी सभ्यता का सूचक नही है। वे मेरे उपदेश से बड़े प्रसन्न हुये। इन बेचारो के साथ इधर के हिन्दू बुरा सलूक करते हैं। इसलिये कइयों ने ईसाई मत की दीक्षा लेली है।

खैर, भोजन कर चल पड़े। गोरी के कई एक सहायक नाले रास्ते मे मिले। उनकी बहार देखते हुये आगे बढ़े। रास्ते मे बिच्छू झाड बहुत देखने मे आये। इनसे बचकर चलना पडता था। जरा सा छू जाने पर जलन होने लगती थी। मुझे कई बार इन्होने बडा कष्ट पहुचाया।

पांच बज चुके थे। मालूम होता था जैसे बिलकुल सन्ध्या हो गई हो। सामने बर्फानी चोटियो की झलक-मात्र दिखाई देती थी। मै अपने सब कपड़े पीछे छोड आया था, केवल एक ही स्वैटर मेरे पास था। जब बागड्वार पहुचे तो खासी सरदी हो गई। मेरे प्रेमी ने जाते ही ठहरने का प्रबन्ध किया। प्रबन्ध क्या किया? एक बड़े पत्थर के ढोके के नीचे गुफा सी बनी हुई थी, उसी मे जाकर बैठ गये। चट्टान जहां ऊपर से नीचे आने मे अन्दर की ओर ढलवान हो जाती है, वही गुफा सी बन जाती है। ऐसी ही गुफा मे जाकर डट गये। एक छोटी सी धर्मशाला भी यहां पर है। उसमे डूमडो के परिवार ठहरे हुये थे; उनके पशुओ ने धर्मशाला को गदा कर रक्खा था। बागड्वार को आप एक जङ्क्शन समझिये। गोरी का एक सहायक नाला गड-गड करता हुआ उसमे आकर यहां मिलता है, उसी को पार करने पर जो त्रिकोण बनता है, वही हम लोग ठहर गये थे। दहिने हाथ गोरी और बाये हाथ पहाडी नाला, बीच के दोआब मे बागड्वार है। यहां भोटियो का बहुत सा माल कई दिन पडा रहता है। हजारो रुपये का माल रास्ते मे एक ओर रखा रहता है। कोई नही छेडता, सब अपने २ रास्ते चले जाते है। जिसका माल है, वह उसके ऊपर एक पत्थर रख देता है। बस, इसी से दूसरे व्यापारी भोटिये समझलेते है कि यह माल सहेजा हुआ है। कोई उसको छूता भी नही। मेरे प्रेमी

केसरसिंह जी ने मेरे लिये एक दो कम्बलो का प्रबन्ध कर दिया, खाने के लिए चावल और सूखी मूली की तरकारी बनादी, उसीसे कुछ पेट पूजा हुई। आज पहली बार मैंने भोटिया चाय का एक घूंट पिया। मुझे इनकी चाय बिलकुल अच्छी नहीं लगी। यह लोग अपनी चाय मे चीनी की जगह नमक और दूध की जगह घी डालते है। इनको यही अच्छी लगती है। अपनी २ रुचि है। आठ बजे के करीब चरसीनाथ भी भूले भटके आ निकले। इनको जोको ने रास्ते म बे तरह सताया। बेचारे रास्ता भूलकर अबतक पहाडो मे भटकते रहे थे। उनका भी प्रबन्ध किया गया। रात कट गई।

नवां पड़ाव

बुर्फ़ का मार्ग

२८ जून सोमवार—सबेरे चल पड़े। आज रास्ता और भी दुर्गम मिला। गोरी के ऊपर बर्फ पड़ी हुई थी। नीचे गोरी नदी, ऊपर बर्फ का पुल—कैसा नवीन दृश्य देखने मे आया। उस बर्फ के ऊपर, धीरे धीरे लकड़ी के सहारे चले। केसरसिंह जी की सहायता से निकल गए। सर्दियो मे तो यह घाटी बर्फ से ढकी रहती है और कोई मनुष्य, पशु, मनस्यारी से सीलम आ जा नही सकता। जब अप्रैल के आरम्भ मे बर्फ पिघलनी शुरू होती है, तो धीरे धीरे घाटी का मार्ग खुलता है। जून के अन्त तक कही कही गहरे मे बर्फ जमी रहती है। व्यापारी लोग उसी पर से होकर आते जाते हैं। कई बार ऐसा होता है कि बर्फ नीचे से नर्म होगई, किसी भोटिए ने उसको तोड़ कर

रास्ता ठीक करना चाहा, पैर फिसल गया और वह बेचारा नीचे गोरी नदी मे पहुच गया। फिर उसका पता कहां ! यही कारण मेरे धीरे धीरे जाने का था।

चलते चलते उतार चढ़ाव पूरा करते हुऐ पांच मील चले गये। अब तक मुझे रास्ता चलते समय बहुत पसीना होता था और मेरे कपडे भीग जाते थे, मगर आज पसीना नही आया। यह तेज हवा की कृपा थी। बड़ा तेज, ठण्डा वायु इन पर्वतो पर चलता है। यदि यात्री सावधान न हो तो पैर से उखाड कर नीचे घाटी मे गिरा देता है। खैर, पांच मील चल कर गोरी के एक और सहायक पहाडी नाले के पास पहुंचे। उस नाले का पुल बधवाने वाले ठेकेदार के पास जाकर ठहरे। धूप निकल आई थी ; आकाश निर्मल था। बर्फानी जल मे स्नान किया। ठेकेदार के ब्राह्मण नौकर ने भोजन बनाया और मुझे बड़ी श्रद्धा से खिलाया।

भोजनोपरान्त आगे का रास्ता लिया। बकरी, भेड़ ले जाते हुए भोटिए व्यापारी बराबर आते हुए मिले। अब अच्छी ऊंचाई पर आगये थे। ग्यारह हज़ार फीट की ऊचाई से क्या कम होगे। चारो तरफ पहाडो की चोटियो पर थोडी बहुत बर्फ पडी हुई थी। उनमे से जल की श्वेत धाराएं निकल निकल कर गोरी नदी से मिलने के लिये उछलती कूदती आरही थी। एक चौरस पहाड़ी मैदान मे पहुंचे। यहां आटा पीसने की चक्की लगी हुई है। यहां का एक निवासी मिला, जो वर्षा न होने की शिकायत कर रहा था। मुझे बडी हसी आई। इतने नाले इर्द गिर्द वह रहे है। इन्हे इतनी बुद्धि नही, जो नालो से जल लेकर पृथ्वी सीच ले। वर्षा के सहारे बैठे है। सच है, मूर्ख

के पाओं के नीचे चाहे खज़ाना क्या हो, पर उसे उससे कुछ लाभ नहीं होता। विद्वान् पुरुष ही उसे खोद कर काम मे ला सकता है। इसी तरह यहां के लोग है। इतनी चौरस भूमि मे जल पहुंचा कर अनाज पैदा कर सकते हैं, किन्तु उतनी इनको बुद्धि नहीं। जो कुछ बाबा आदम से चला आता है, वही इनके लिए ठीक है।

इस पनचक्की वाले गांव से निकल कर आगे बढ़े। बुर्फू का गांव अब निकट ही था। पहाड़ी रास्ता घूमकर जो ऊपर चढ़े तो सामने बर्फ से लदी हुई तीन चार चोटियाँ दिखाई दी। यही द्वारपाल हिमालय के श्वेत भवन के कगूरे हैं। आज पहिली बार इतने निकट से इनके दर्शन हुए। प्रभु को धन्यवाद दिया।

बर्फू की ओर जाने वाला रास्ता बहुत ख़राब है। कच्चा पहाड़ है; बर्फ ने इसको चूर चूर कर दिया है। जैसे किसी पहाडी चट्टान के नीचे बारूद लगा देने से उसके भाग छिन्न भिन्न हो जाते है, यही दशा यहां मैने देखी। रास्ते की यह दशा कि यदि एक छोटा सा पत्थर फिसल पड़े तो पाओ के नीचे की बजरी निकल निकल कर नीचे बही चली जाती है और प्राण बचाना कठिन हो जाता है। आप पूछेंगे कि यह रास्ता पक्का नहीं है ? पक्का कैसे हो। जब शीतकाल मे इर्द गिर्द के पहाड़ बर्फ मे ढक जाते हैं और यह घाटी भी हिम से सफेद हो जाती है, तो बर्फ इन पहाड़ो के साथ बडी निर्दयता का व्यवहार करती है। जैसे सांप किसी पशु को अपनी लम्बी देह मे बांधकर उसे जकड़ लेता है और पशु की हड्डियां तोड़ डालता है, इसी प्रकार यह हिम भी करती है। वर्षा ऋतु मे पानी पर्वतो के छिद्रों मे भर जाता है। अक्टूबर मे बर्फ पड़ने लगती है। नवम्बर, दिसम्बर, जनवरी और फरवरी—इन चार

महीनो के कडकडाते जाड़े मे—उन छिद्रो का जल, बर्फ बनकर अपना आकार बढ़ाता है। वे छिद्र फट जाते है, उनकी सङ्गठन शक्ति जाती रहती है; वे अलग अलग हो जाते है। मार्च, अप्रैल मे जब बर्फ पिघलती है तो बड़े बड़े बर्फ के ढोके चोटिओ से खिसकते है, वे अपनी जगह से चलते है। किस की शक्ति है, जो उनका रास्ता रोक सके। सबको पीसते हुए और बडी गर्जना करते हुए वे नीचे घाटी की ओर दौड़ते हैं। सडक के पत्थरो और नदियो के पुलो को तोड़ते हुए गोरी मे पहुंचते है। भला इनके आगे सडक क्या ठहर सकती है, वे उसकी हड्डी पसली तोड देते है। हर साल सड़क की मरम्मत हो, तब काम चलता है। इन बेचारे भोटिओ को यह सब सहना पडता है।

शाम को बुफूं पहुच गये। गोरी नदी का पुल पार कर, मील भर की चढ़ाई चढ़कर, गॉव मे पहुंचे। बुफूं पुराना ग्राम है। दो सौ घरो की बस्ती होगी। यहां आजकल सब घर भरे थे। मनस्यारी तथा उसके इर्द गिर्द गोरी फाट के ग्रामो के लोग अपने परिवारो सहित गर्मियो मे मल्लाजोहार मे आजाते है। स्कूल भी इन दिनो मे खुल जाता है। छोटी छोटी फुर्तीली भोटिया लड़कियां और लड़के इधर उधर खेल कूद रहे थे। मै धर्मशाला मे जाकर ठहरा। यहां भी मेरे आने की खबर थी, इसलिये सब प्रबन्ध होगया। लोग मिलने के लिये आए। उनको जुए की बुराइयां, सदाचार की महिमा तथा शराब के दोष समझाए। हाथ, पैर और मुह धोकर परमात्मा की प्रार्थना की, तदुपरान्त पाच चार कम्बल ओढ़ कर सो गये।

दसवां पड़ाव

मीलम का मार्ग

२९ जून मङ्गलवार—रात जुओ के मारे बड़ी कठिनाई से कटी। इन भोटिओ के कपडो मे बहुत जुए होती है। ये लोग स्नान कम करते है और सफाई पर विशेष ध्यान नही देते, इसलिये इनके कपड़ो मे कृमि पड़ जाते है। जो कम्बल मैने इन लोगो से लिये थे, उनमे सर सर जुए चलती थी। क्या किया जाता, किसी प्रकार रात बिताई।

सात बजे सबेरे एक डूमड़े का लडका पथप्रदर्शक के तौर पर साथ हो लिया। रास्ते से अनभिज्ञ होने के कारण उसकी जरूरत थी। केसरसिंह मेरे साथ बुर्फू नही आये थे, वे मीलम पहुंच गये। रास्ते से भली प्रकार परिचित होने के कारण उन्हो ने सन्ध्या को ही अपना मार्ग तै कर लिया और अपने घर मे जाकर आराम से सोए।

मै उस डूमड़े के छोकरे के साथ होलिया। आज गोरी के दहिने किनारे चले। किनारे से यह मत समझिये कि बिलकुल किनारे ही, गोरी से कम से कम चारसौ फीट की ऊंचाई पर की पगडन्डी पर जा रहे थे। दो मील पर बिलजू नाम का ग्राम है। वहां पहुंचे। औरते पहाड़ी नदी से तावे के मटको मे पानी भर भर कर अपने घरो को ले जारहीं थी। छोटे २ लडके गलिओ मे खड़े मुझे देख रहे थे। उनकी भोली भाली मगोली सूरत, पुष्ट हाथ पैर, गठीला बदन चित्त को प्रसन्न करता था। मैने सोचा—"कैसी अच्छी सामग्री यहां पर देश-भक्तो के लिये है। इन पर्वतो पर से क्या क्या काम नही हो

सकते। थोडी जागृति चाहिये। यही बालक कट्टर देशभक्त बन कर माता का दुःख दूर कर सकते हैं।" मन के साथ इस प्रकार की बाते करता हुआ चला। आगे बढ़कर नन्दा देवी के भव्यदर्शन हुये। एक रास्ता नन्दाकोट को बाये हाथ की ओर मे गढवाल जाता है। उसी रास्ते मे ठीक सामने, आकाश से बाते करती हुई, सफेद चमकती हुई दो चोटियां दिखाई देती है। मीलम जाने वाली पगडण्डी से ये दोनों चोटियां बिलकुल पास मालूम होती हैं। इन दिनों आकाश निर्मल रहता है। नीले आकाश मे, उन्नत मुख किये, नन्दादेवी साभिमान खड़ी है। बाये ओर 'बनकटा' नाम की चोटी है, उसकी आकृति कुल्हाडे जैसे होने से उसका ऐसा नाम पड गया है। मै उस चोटी का नाम परशुराम रखता हूं।

नन्दा देवी को प्रणाम करने के बाद मैंने परशुरामजी को नमस्कार किया और उनकी शोभा देखी। कई एक विकट स्थानो को कूदते फांदते एक पुल के पास पहुचे। यह पुल गोरी की सहायक नदी बक्खा पर बना है। इसको देखने से भी डर लगता है; बडी बिगड़ी हुई नदी है। इसके कमजोर पुल पर डरते डरते पांव रक्खा। पार करने के बाद ईश्वर को धन्यवाद दिया। अब मीलम के मैदान मे पहुंच गये। सामने पर्वत के नीचे घाटी मे पत्थरो के मकान दिखाई देते थे। आगे बढ़े। खिलखिलाती धूप बडा सुख दे रही थी। सूर्यदेव हस हस कर प्रकाश डाल प्रकृति का सौन्दर्य बढ़ाते थे। उनकी तरफ पर्वतों पर बर्फ पड़ी थी। कुछ दूर उत्तर पश्चिम मे बर्फ से लदी हुई चोटियां अपनी अनोखी छटा दिखा रही थी। कहना क्या, चारों ओर बर्फानी चोटियो से घिरे हुये इस मीलम ग्राम मे

मैने प्रवेश किया। भारतवर्ष का इस ओर का यह अन्तिम ग्राम है, इसके आगे हिमालय का श्वेतभवन है, जिसको लांघकर तिब्बत जाना पड़ता है। आइये पाठक, मीलम घाटी मे प्रवेश करे और पूज्य हिमालय के श्वेत भवन मे जाने की तैयारियां करे।

ग्यारहवां पड़ाव

मीलम

मीलम तीन सौ घरों का ग्राम है। सब मकान पत्थर के है। जब मेने ग्राम मे प्रवेश किया तो नौ बजने वाले थे। डूमड़े के छोरे को मैने वापिस बुर्फू भेज दिया। भोटिआ लोग मुझसे बडे प्रेम से मिले। केसरसिंह जी भी यहा मौजूद थे। उन्होने रायबहादुर कृष्णसिंह जी ❀ के मकान मे मेरे ठहरने का प्रबन्ध कर दिया। रायबहादुर साहब बड़े सज्जन पुरुष थे। वे ससार के उन साहसी पुरुषों मे से थे, जो अपनी जान को हथेली पर रख कर मनुष्यमात्र के लाभ के लिये पृथ्वी के कठिन भागो की खोज करते हैं। उन्होंने तिब्बत मे घूम घूम कर वहा के नकशे तय्यार किये थे। यदि वे किसी यूरोपियन देश मे उत्पन्न होते, तो सारा सभ्य ससार उनके गुणों से परिचित हो जाता और वे एक प्रसिद्ध (Explo1er) अन्वेषक माने जाते। मैं उनके विपय मे अधिक आगे चलकर लिखूगा।

गोरी नदी के किनारे मुझे ठहरने को स्थान मिला। कई एक विद्यार्थी आकर इकट्ठे हो गये। उन्होंने मकान झाड़ने, बुहारने में सहायता दी। दो जने मेरे साथ गोरी पर गये। बर्फ के टुकड़े नदी मे बहे आ रहे थे। कैसा ठण्डा जल होगा, पाठक

❀ शोक है कि रायबहादुर कृष्णसिह जी का कुछ वर्ष हुए, देहान्त हो गया है। ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे—लेखक

अनुमान कर सकते है। उस जल मे मैंने स्नान किया और अपनी थकावट मिटाई। नहा धोकर अपने मकान पर आया और भोजन किया।

कैसा अच्छा स्थान है। आजकल तो यहां आनन्द है। मक्खी, मच्छर, खटमल और बिच्छू—कुछ भी नही। खिलखिलाती धूप मे बाहर घास पर चटाई बिछाकर मै लेटगया। धूप कैसी अच्छी मालूम होती थी। इस जून के महीने मे यहां पूप माघ से अधिक सरदी पड़ती है, खाने का खूब मजा आता है। ऊंचाई बारह हजार फीट से अधिक है, इसलिये वृक्षो का यहां अभाव ही है। घास होती है। सामने पहाड़ो पर झाडियो जैसा जगल दिखलाई देता था। सरदी के मारे वनस्पति भी अपनी माता पृथ्वी के गर्भ मे घुसी पड़ती है। आनन्द है! आनन्द है!!
धूप का खूब मजा लूटा। शाम होगई। भोजनोपरान्त सो गया।

३० जून से ११ जौलाई रविवार तक—ग्यारह बारह दिन मीलम मे रहे—खूब घूमे। गोरी नदी का बर्फानी पहाड़ (ग्लेशियर) पास ही है। एक दिन सवेरे, मै अपने स्नेही श्री खड्गराय जी के साथ गोरी नदी के किनारे किनारे उसका ग्लेशियर देखने गया। मेरे स्थान से यह बर्फ का पहाड़ सवा मील पर होगा। घूमते २ चले गये। सामने ऊंची काली काली पहाड़ी के बीच मे से गोरी आ रही थी। जैसे पर्वत काटकर बडी बडी सुरगे रेल जाने के लिये बनाई जाती है, ऐसी ही सुरग के सामने हम दोनो पहुंच गये। बर्फ पर चढ़ना शुरू किया। बर्फ का पहाड काला क्यो? कारण यह था कि इर्द गिर्द के पहाड़ो पर से फिसलकर आने मे बर्फ अपने साथ बहुत से पत्थर मिट्टी ले

आती है, बर्फ तो पिघल कर नीचे नदी मे जा रही है, मिट्टी पत्थर बेचारे अपनी भोडी सूरत मे ऊपर रह जाते है। यही उस पहाड का कालापन है—नीचे ठोस, किन्तु सफेद बर्फ जमी हुई है। कई नाले ऊपर पर्वतो से भाग भाग कर इसमे मिल रहे हैं। उनकी भी सुरंगे बनी हुई थीं, जिन मे यदि कोई गिर जाता तो फिर उसका जीता निकलना असभव है। इधर उधर घूम कर इस निर्जन पर्वत को देखा। मालूम होता है कि यह ग्लेशियर बहुत बड़ा होगा। मीलम वासी भोटिए भी यही कहते है कि यह ग्लेशियर मीलम के बिल्कुल पास था। धीरे धीरे बर्फ़ पिघली जा रही है और ग्लेशियर पीछे हट रहा है। बर्फ के चिन्ह पहाड़ो पर बने हुए है, नीचे नीचे हटने की लकीरे साफ दिखाई देती है।

दो घन्टा इधर उधर घूम कर मै अपने प्रेमी के साथ लौट आया। रास्ते मे एक चरवाहा भेड़े चराता हुआ मिला। इधर इन पहाड़ो पर उन्ही जंगली झाड़ियो को खाकर भेड़े और बकरी खूब मोटे होते है। मैने उस चरवाहे से यह सब बाते पूछीं। यद्यपि वह बिल्कुल अशिक्षित था, पर बाते समझ की करता था। शिक्षा फैलने से ये लोग भी अच्छे चतुर हो सकते है।

गोरी, मीलम के उत्तर पश्चिम, गढ़वाल की तरफ से आती है। गढ़वाल और अल्मोड़ा की सीमा बर्फानी चोटियो से घिरी है। मीलम के पश्चिम गढवाल की तरफ नन्दादेवी २५८५० फीट ऊची आकाश से बाते कर रही है। उसकी पन्द्रह सखियां ऐसी है, जो प्रत्येक, बीस हज़ार फीट से अधिक ऊंची है। नन्दादेवी के दक्षिण की ओर त्रिशूल की तीन ऊंची

चोटियाँ है, जो २३००० फीट से भी अधिक ऊंची है। दक्षिण पूर्व की तरफ नन्दा कोट २२६५० फीट ऊंचा अपना जोबन दिखा रहा है। इस प्रकार मीलम के पास हिमालय के श्वेत भवन के कई एक प्रसिद्ध कगूरे है। गोरी की गड-गड़ चौबीस घण्टो रहती है और उसी के द्वारा दो तीन पनचक्कियां आटा पीस पीस कर मीलमवालो की सेवा कर रही है। लोग इसी गोरी का मैला पानी पीते है और इसे बड़ा गुणकारी बतलाते है। घाटी के बीच एक तरफ उत्तर पूर्व की ओर ग्राम बसा है। दक्षिण की ओर पहाड़ के नीचे गोरी बहती है। दो मील दक्षिण की ओर नदी के किनारे पांच ग्राम और है। तीन मील पूर्व की ओर बिलजू ग्राम है।

मीलम के उत्तर से बक्खा नदी आकर गोरी से मिली है और एक नदी नन्दादेवी से निकल कर गोरी की सहायक बनी है। यहा कोई अच्छी दूकान नही, सब नीचे से अपने २ काम के लिये रसद सामान लाते है। कई कई महीनो का सामान साथ रखना पड़ता है। भाजी—तरकारी सुखाई हुई साथ रखते है। औरते बड़ी मजबूत और मेहनती है, गोरी नदी से पानी भर कर लाती हैं और घर का सारा काम बड़े सुचारु रूप से करती है।

मैने यहा पर व्याख्यान दिये, शिक्षा की उपयोगिता तथा अमली धर्म के सिद्धान्तो को समझाया। लोग बड़े प्रसन्न हुए। यहां कई एक पहाड़ी यात्री आकर इकट्ठे हो गये थे। भोटिए लोगो ने इनकी यथाशक्ति सहायता की। पांच चार साधु भी नीचे मैदान से यात्रा के लिये आगये थे, उनको भी इन लोगो ने कम्बल दिये, गुड़ सत्तू का भी प्रबन्ध कर दिया। मुझे भी कपड़ो की जरूरत थी, क्योकि मै अपने साथ बहुत कम सामान

लाया था। श्री विजयसिंह पांगटी बड़े धर्मात्मा सज्जन है। उनके भाई भी बड़े योग्य व्यक्ति है। उन्होने तथा प्रेमी खड्ग-राय जी ने मिलकर मेरे लिये सब प्रबन्ध कर दिया। एक अच्छा गरम कश्मीरे का ओवरकोट बनवाया। श्री खुशहालसिंह बूढ़ा और श्री दीपसिंह ने भी हाथ बटाया। मुझे जो सामान दरकार था, उसका प्रबन्ध इन भोटिये सज्जनों ने प्रसन्नता पूर्वक कर दिया, जिसके लिये मै इन भाइयो का बड़ा कृतज्ञ हू। यदि ये लोग हाथ न बटाते तो मेरी तिब्बत यात्रा कुशल पूवक कभी नही हो सकती थी।

ग्यारह बारह दिन मीलम मे रहकर अपनी विकट यात्रा की तैयारियां करता रहा। भोटिए लोग भी अपने माल असबाब लादने की झोलियां सीने तथा अपने परिवार के लिये तीन महीने का सामान जुटाने मे लगे थे। तिब्बत की यात्रा करना मानो यमलोक जाकर लौटना है। उसके लिये पूरा सामान करना पड़ता है, जङ्गल से लकड़ी काट काट कर इकट्ठी करनी पड़ती है। क्योकि जब भोटिये व्यापारी तिब्बत चले जाते है, तो मीलम मे सिवाय उनकी स्त्री बच्चो के और कोई नही रह जाता। कोई बीमार बुड्ढा भले ही रह जाय, नही तो प्रायः सभी पुरुष व्यापार करने जाते है। तिब्बत से कई हुणिए हिमालय पार कर अपनी भेड़े मीलम मे ले आते है और उनकी ऊन वेचकर अनाज और कपड़ा ले जाते है। ये लोग अपने अपने व्यापारी के यहां जाते है और कोई भोटिया व्यापारी किसी दूसरे तिब्बती व्यापारी को बहका कर अपनी ओर लाने का यत्न नही करता; अपनी मरजी से कोई किसी को छोड़ दे, यह दूसरी बात है। इनके व्यापार के नियम बधे है। मेरे सामने दो

एक दिन मै अपने दो प्रेमियो के साथ फिर नन्दा देवी देखने गया। दस बजे के बाद हम लोग अपने स्थानो से चले होगे। मीलम के पास गोरी के पुल को पार कर रास्ता जाता है। नदी के किनारे किनारे बाते करते हुए चले गये। बिलजू से मीलम आने मे जिधर नन्दादेवी जाने का रास्ता देखा था, उधर ही आज जाना था। नन्दादेवी के ग्लेशियर से एक नदी निकलकर गोरी से मिलती है; उस सङ्गम पर एक ग्राम बसा है, वही पहुंचे। ग्रामवालो से प्रेम पूर्वक वार्तालाप किया। यहां से पहाड़ी पथप्रदर्शक को साथ ले, नदी पारकर, पहाड़ पर चढ़ना शुरू किया। अभी बहुत दूर नहीं गये थे कि थकान लगने लगी; जरा दस कदम जाते, झट दम फूलने लगता था। हिम्मत कर थोड़ी दूर और बढ़े तो विष चढ़ने लगा। इधर हलाहल विप का पौधा होता है, उसकी गन्ध से विप चढ़ जाता है। एक ऊचे करारे पर बैठ गये। सामने नन्दादेवी बादलो से ढकी थी; आज आकाश मे कुछ कुछ बादल थे। आध घन्टा उस करारे पर इस आशा मे बैठे रहे कि नन्दादेवी शीघ्र अपने आमोद प्रमोद से छुट्टी पाजाए तो हमे उससे वार्तालाप करने का अवसर मिले. किन्तु ऐसा न हुआ। निराश होकर हम लोग लौट पड़े। रास्ते मे भोज पत्र का पेड़ देखा। उसकी छाल कागज की तरह होती है और एक परत पर दूसरी परत निकलती चली आती है। ग्राम के निकट घाटी मे खेतो को देखते हुए मीलम की ओर चले। दोपहर के करीब थके हारे घर पहुचे।

मीलम मे एक सरकारी स्कूल है। शिक्षा का धीरे धीरे प्रचार हो रहा है। शिक्षा के प्रचार से इन लोगो मे जागृति भी हो रही है। हिन्दी के समाचार-पत्र आर्यमित्र आदि, आते

है। अंग्रेजी के समाचार-पत्रो के पढने वाले भी होते जाते है। आर्यसमाज के सिद्धान्तो का भी थोडा बहुत प्रचार इधर भोट मे धीरे धीरे हो रहा है। तात्पर्य यह है कि प्रबुद्ध भारत के मधुर राग की ध्वनि इन पहाडो मे भी सुनाई देने लगी है। क्यो न हो, बेतार का तार तो हिमालय के श्वेत भवन मे लगा ही हुआ है।

बारहवां पड़ाव

हिमालय के श्वेत भवन की ओर प्रस्थान

१२ जौलाई रविवार—आज मीलम से चलने की तय्यारी थी। दूसरे पहाड़ी यात्री और साधु तो मुझसे पहले ही चल दिये थे। कैलाश जानेवाला यात्री स्वय अकेला हिमालय पार कर तिब्बत नही जा सकता, उसको भोटियो के साथ जाना आवश्यक है। प्रथम तो कोई खास रास्ता उधर जाने का बना हुआ नही, यदि रास्ता हो भी तो अकेला यात्री उन बर्फानी पर्वतो को पार करने मे सर्वथा असमर्थ है। भोटिये व्यापारी भी मिलकर चलते है; उनको भी अकेले मे अपने प्राणो का भय रहता है। जौलाई के आरम्भ से दो चार व्यापारी रोज अपनी भेड़ बकरी लादे हुए उत्तर को ओर मह करते है। यात्री लोग भी अपनी अपनी सुविधानुसार इनके साथ हो लेते है। जिस किसी के साथ जिसका समझौता हो जाता है, वह उसी के साथ चल देता है। मुझे विजयसिंह जी पांगटी के साथ जाना था, उन्होंने बारह जौलाई अपने जाने की तिथि निश्चित की थी, इस कारण मुझे भी तब तक ठहरना पड़ा।

आइए पाठक, मनस्यारी से मीलम और मीलम से ऊंटाधुरा की ओर एक दृष्टि डाले। गोरी के किनारे २ कैसे कठिन रास्तो से हम लोग आये है। चीड़, अगर, सुराही, बांझ आदि पेड़ो को देखते हुये, जल-प्रपातो का आनन्द लेते हुये, मीलम मे पहुंचे थे। वहां से गढ़वाल यद्यपि बिलकुल निकट है, पर उधर जाना कैसा कठिन है। मीलम से गढवाल जाना मानो मौत का सामना करना है। एक ओर गढ़वाल की सीमा के दुर्गम पर्वत, दूसरी ओर पचाचूली की पर्वत माला—सिर पर, उत्तर मे कुङ्गरी बिङ्गरी आदि चोटियां, दक्षिण मे गोरी नदी की भयानक घाटी, इस प्रकार मीलम के इर्द गिर्द प्रकृति ने कैसी अभेद्य दीवारे खड़ी की हैं और उसको चारो ओर से सुरक्षित किया है। वर्ष मे सात महीने तो कोई किसी प्रकार भी इसमे घुस नहीं सकता। सूर्य देव की कृपा से इधर जोहार मे केला, नीबू, नारगी आदि फल और धान, मडुवा, जौ, गेहू, बासमती, बीनस, ऊगल, मूली, फाफर, आलू आदि अनाज और सबजी भी पैदा होती हैं, जिनसे भोटिओ का पालन होता है। घाटी मे आलू की उपज ज्यादह है। मीलम के पास गोरी नदी के गल से दो मील के फासले पर शांडिल्य ऋषि का कुण्ड है। वहां जन्माष्टमी के रोज बड़ा मेला लगता है। इर्द गिर्द के ग्रामो से पहाड़ी औरते वहां बहुत जाती हैं।

आखिर चलने की घड़ी आगई। विजयसिंह ने अपने सम्बन्धियो से मिलने मिलाने मे देर करदी। हिमालय पार जाकर लौटना, इन लोगो के लिये ऐसा ही है, जैसा कि मृत्यु लोक से वापिस आना। मै सुना करता था कि रेल होने से पहले हरिद्वार, काशी, गया आदि तीर्थो पर जाने वाले यात्री

अपने घरवालो से बिदा होते समय यह सोचा करते थे— "देखे, तीर्थ यात्रा कर जीते घर लौटते है या नही।" ऐसाही दृश्य मैने यहां पर देखा। अपने घर वालो से जुदा होते समय भोटिए लोगो के चित्त मे भी यही भाव रहता है। मैं तो सामने का एक बगला देखने चला गया और विजयसिंह जी अपने घरवालो को समझाने बुझाने मे लगे रहे।

ग्यारह बजे के बाद ठीक तैयारी हुई। विजयसिंह जी की खच्चरे और उनके आदमी आगे बढ़ गये। मै और पांगटी जी इकट्ठे चले। अब हमको बक्खा के किनारे किनारे जाना था। बक्खा नदी गोरी की छोटी बहन है। इसके ऊपर दोनो ओर जो पहाडिया है, वे गिद्धो की तरह हम लोगो की ओर देख रही थी। लंबी २ गरदनो वाली ये पहाडियां मानो अब ऊपर झपटना ही चाहती है, जरासा कही से कोई पत्थर का टुकड़ा हिला, बस फिर इनकी कतार चली। धां ! धां !! की अवाज से कलेजा कांप उठता है। बक्खा नदी की भूख को यही पहाड़िया मिटाती है। मुझे तो यह रास्ता बडा भोडा मालूम हुआ। ऊपर दृष्टि डालने से ठूठ के ठूठ दिखाई देते थे। ये सब मायावी राक्षसो के विहार का फल है। जहां कही वे अपनी श्वेत पादुका पहिन कर विहार (Skating) करने के लिये निकलते है, वहां ठूठ ही ठूठ रह जाता है।

बक्खा नदी पर कई जगह बर्फ का पुल देखने मे आया। विजयसिंह जी एक खच्चर मेरी सवारी के लिये लाये थे। उसका प्रबन्ध रायबहादुर कृष्णसिंह जी ने कर दिया था। आसान रास्ते मे जहा गिरने का डर कम रहता, वहां मै खच्चर सवारी कर लेता था। वेढगे, कच्चे, बे सिर पैर की जगहो

मे मै पैदल चलता था। इस प्रकार बड़ी कठिनाई से पांच मील पूरे किये और बक्खा का बर्फानी पुल पार कर दूसरे किनारे ऊंची पहाडी पर चढ़ गये। यहां कुछ चौरस भूमि आगई थी। आज यहीं ठहरने का निश्चय किया। तम्बू खड़े कर दिये और बिस्तरे लगाकर बैठ गये; और भी कई एक डेरे यहां पड़े थे। यद्यपि काफी ऊंचाई पर आगये थे, परन्तु हिमालय का श्वेत भवन अभी यहां से कुछ मील दूर था। रात को भोजन कर आनन्द से सो रहे।

१३ जौलाई मगलवार—आज दिन भर यहीं रहे। बादल घिर आये थे। वर्षा होती रही। विजयसिंह जी के पास आंधी, शीत, वर्षा, ओले सभी से बचने का आवश्यक सामान था। नौकर भी उनके साथ थे। दिन भर पाल मे बैठे रहे। रात को उपदेश हुआ।

तेरहवां पड़ाव

श्वेत भवन के दिव्य दर्शन

१४ जौलाई बुधवार—आज पूज्य हिमालय के श्वेत भवन में प्रवेश करने का दिन था। प्रवेश-टिकट मिल गये थे। दिन भी निर्मल था। सवेरे सूर्योदय से पहले ही चल पड़े। मैंने ओवरकोट और मोटा गरम पाजामा पहन लिया; सिर पर कानपुरी ऊनी कनटोप ओढ लिया, खूब तैयार होकर खच्चर पर चढ़ बैठा। सब लोग चल पड़े।

पहले दुङ्ग पहुचे। यहां पर ऐसा मालूम हुआ मानो बड़े सुदृढ़ किले की दीवारों के नीचे खड़े है। उन दीवारो के बीच मे

से वक्खा नदी आरही थी। इसके दहिने किनारे हो लिये। श्वेतभवन की चार दीवारी को पार किया। अब भवन की सीढ़ियां चढते है। ऊपर २ चले जा रहे हैं। खच्चर थक जाता है तो उस पर से उतर कर पैदल चलता हूं। थक गया—जरासी देर मे—हां, यह हिमालय है। वक्खा नदी के ग्लेशियर पर चढ रहे हैं। श्वेत, श्वेत, श्वेत हिम दोनो तरफ! और आगे बढ़े। गल (वर्फानी पहाड) यहां फटा हुआ है, उसमे से नदी वह रही है। उसके किनारे २ वर्फ मे खच्चर पर चढा हुआ मै जा रहा था। सामने श्वेतभवन का प्रथम द्वार है। आहा! धन्य मेरे भाग्य!! अपूर्व शोभा, विचित्र चमत्कार!!! नीले, काले, सुरमई, मटियाले पर्वतो पर प्रणयोन्मत्ता हिम नाच रही थी। यह क्यो? उसके पति भगवान् भास्कर आठ महीने के वाद घर आये हैं। इसकी प्रसन्नता का यही कारण है इसीलिये श्वेतभवन मे आजकल आनन्द मगल है। पति के पदपकजो का स्पर्श करके किस आनन्द से यह नेत्रो से मुक्ता-फल गिरा रही है। क्या कहना, विरहिणी हो तो ऐसी हो!

फिर बढ़े। गल के ऊपर ऊपर चले, वर्फ मे पाओ धसते हैं। ऊंटाधुरा घाटी (Pass) के पास पहुंच गये। सामने ऊंटा· धुरा है, पीछे की ओर वडा ग्लेशियर, दस मिनट ठहर कर इस १७५९० फीट ऊंचे घाटे पर चढ़ना शुरू किया। धीरे धीरे, एक एक कदम चढकर खच्चरे थक जाती है, भेड़ें दम लेने लगती है; बकरियां सिर नीचा किए खडी हो जाती हैं। चले; धीरे २ एक कदम, दो कदम, तीन कदम, फिर रुक गये; दम फूलता है; सिर कुछ दर्द करने लगता है, प्यास लग गई है। विजयसिंह जी पानी पीने नही देते, कहते है पानी यहां का अच्छा नही। तिव्वती

किशमिश मुह मे डालता हूं। फिर दस कदम बढ़ा, लाठी के सहारे सिर झुकाये खड़ा हूं। चढ़ाई बिलकुल सीधी है। ऐसी विकट चढ़ाई पूज्य हिमालय के श्वेतभवन को क्यो है? यह भारत माता का रक्षक है। इसने अपने दुर्ग को ऐसा दृढ़ किया हुआ है कि कोई भारत का शत्रु भारत मे प्रवेश न करसके और यदि छल पूर्वक प्रवेश कर जाय तो जीता बाहर न जा सके। वाहरे द्वारपाल, तुम धन्य हो!

ऊटाधुरा की चोटी पर पहुच गये। अपूर्व नैसर्गिक छटा! श्वेतभवन के पुनीत दर्शन!! भगवान् भास्कर के चरणो से लिपटी हुई श्वेतांगना बाला पति के पाओ की रज को अपने आंसुओ से धो रही है। वे उसे प्रेम से आलिंगन कर अपना अपराध क्षमा करवा रहे है और नीले, पीले, बैंजनी, सुनहले रेशमी वस्त्रो को अपनी प्यारी के अङ्गो पर डाल उसके सौन्दर्य्य को बढ़ा रहे है। पति का अविरल प्रेम देख कर पुलकित अङ्गो से वह उनके पाओ चूमती है, और हाथ जोड़ यह प्रार्थना करती है—

"इस बार यह दासी आपके पदो का ध्यान करती हुई साथ जायगी; जगल, मैदान मे आपकी सेवा कर आनन्द सुख लाभ करेगी।"

उसकी प्रार्थना स्वीकृत हो गई। हमे भी उसकी प्रसन्नता से बड़ा सुख मिला। ऊँटाधुरा के नीचे उतरे। नीचे उतरने मे पौन मील हिम ही हिम पर चलना पड़ा। किसी प्रकार नीचे उतरे; पहला घाटा निकल गया।

दस मिनट ठहर कर फिर दूसरे पहाड़ पर चढ़ना आरम्भ किया। यह १७००० फीट ऊचा है, इसका नाम जयन्ती है। इस पर की सारी बर्फ पिघल गई थी, इसलिये इसको पार

करने मे कुछ भी कठिनाई नही हुई। उतार मे एक बड़ा ग्लेशियर मिला। इर्द गिर्द भी गल ही गल दिखाई देते थे, जिनमे से नदियां निकल निकल कर न जाने कहां जा रही थी। जयन्ती भी पार कर लिया।

सब मे अन्तिम द्वार श्वेतभवन का कुङ्गरी बिङ्गरी है। इसकी ऊंचाई १८३०० फीट है। सामने, ऊंचे, दूर, गढ की तरह कुङ्गरी बिङ्गरी का घाटा दिखाई देता था। कई एक घुमाव फिराव के बाद ग्लेशियर से ऊँचे उठे। मै खच्चर पर सवार था। विजयसिंह जी भी अपने खच्चर पर सवार थे, उनके नौकर हसते चले जा रहे थे, उनको किसी प्रकार का कष्ट चढाई मे मालूम नही होता था। उनके लिए यह साधारण यात्रा थी। यह सब अभ्यास का फल है।

ग्लेशियर से ऊपर उठने के बाद बिलकुल सीधी चढाई पर जाना था। पशु बेचारे भी थक गये। मेरी जेब मे जो तिब्बती किसमिस थी, वह मैने अपने खच्चर को खिला दी—चार बज चुके थे। रवि की किरणे पर्वतो पर पडी हुई धुन्ध मे से छन कर आ रही थी। ऐसा प्रतीत होता था, मानो सूर्यदेव के हृदय पट पर वैराग्य का श्वेत आवरण छा गया हो और उनका ध्यान अपने परोपकार के उच्चादर्श की ओर फिर खिंचा हो, नही तो जौलाई के महीने मे चार बजे की धूप ऐसी हलकी और उसका प्रकाश ऐसा धुधला हो नही सकता था। अभी हम लोगो को कुङ्गरी की महा भयानक चढ़ाई पर चढ़ना था। मै तो थक कर चूर हो गया, क्योकि सवारी के साथ खच्चर चढाई नही चढ़ सकता था, इसलिये मुझे पैदल चलना पड़ा। विजयसिंह जी मुझसे बहुत आगे निकल गये और ऊपर पहाड़ पर खडे

मुझे चढ़ने के लिये उत्साहयुक्त वचनो से बुला रहे थे। मै दो कदम चढकर बैठ जाता, और फिर ऊपर की ओर दृष्टि डाल कर उस चोटी की ओर देखता, जहां विजयसिंह जी खड़े थे। "क्या कभी मै वहां तक पहुंच सकूंगा"—यह निराशासूचक शब्द मेरे मुह से निकले। तत्काल ही अपने को धिक्कार कर मैंने कहा—

"क्या जो काम यह भोटिए कर सकते है, उसे मै नही कर सकता ? अवश्य कर सकता हूं।"

फौरन उठा। लकड़ी के सहारे धीरे धीरे पैर आगे बढ़ाया, बड़ी कठिनाई से पैर उठते थे; शरीर का सारा बोझ पीछे की ओर गिरा पड़ता था। कुछ परवाह नही की। ज़रा सुस्ता लिया और एक पत्थर पर बैठकर तान उड़ाई—

"सारे जहां से अच्छा, हिन्दोस्तां हमारा;
हम बुलबुले हैं उसकी, वह गुलिस्तां हमारा।
पर्वत जो सब से ऊंचा, हमसाया आसमां का;
वह सन्तरी हमारा, वह पासेवां हमारा।"

भारत रक्षक हिमालय के गुण गाता हुआ आगे बढा। मेरे आगे जो पशु जा रहे थे, उनमे एक घोड़ा बहुत थक गया था। उसे मार २ कर ऊपर ले जा रहे थे। मैंने बहुतेरा कहा कि इसे कुछ खिलाकर ले जाना चाहिये, लेकिन चू कि मञ्जिल पूरी हुआ ही चाहती थी, इस हेतु किसी ने कुछ परवाह नही की। सब ऊपर चढ़ गये. उन्होने कुगरी बिंगरी का घाटा तै कर लिया। विजयसिंह जी भी अपने नौकरो के साथ ऊपर पहुंच गये। मै पीछे रह गया और मेरे पीछे एक शराबी भोटिया

व्यापारी हाँफता हुआ चला आता था। अब केवल सौ गज चढाई बाकी रह गई। किसी प्रकार दम लेता, चित्त को ढाढस देता, टागो को पुचकारता और निरुत्साह को फटकारता ऊपर चढ ही गया। चढाई खतम होगई, तिब्बत सामने है। १८३०० फीट की ऊचाई पर पहुंच गया, भारत की सीमा का अन्त हुआ; भारतीय द्वारपाल के श्वेतभवन के जोहार वाले तिब्बती दरवाजे के पास मै खडा था।

आइए पाठक, तिब्बत प्रवेश करने से पहले एक बार जननी जन्मभूमि से प्रेम भरी बाते करले—पीछे एक बार घूमकर देखले—हिमाचल के श्वेतभवन पर दृष्टि दौडाले। माता से विदा मांगकर, उसकी आज्ञा से, उसका आशीर्वाद लेकर, आगे बढ़ेंगे, तभी आगे की यात्रा भी सफल हो सकेगी।

× × × ×

भाई सुनो मन लगाकर बात मेरी,
चाहो बने सफलता बिन दाम चेरी।
लो मन्त्र मोहन जपो—"विजयी बनेंगे!
आवें हजार विपदा तब भी बढ़ेंगे॥

(छन्द वसन्त तिलक)

सिंहावलोकन

१८३०० फीट ऊंचे इस घाटे पर खड़े होकर पीछे की ओर दृष्टि डालिये। क्या देखते है ? सामने बीस तीस मील के घेरे मे प्रकृति के सौन्दर्य की अवर्णनीय शोभा दृष्टिगोचर होती है। पूर्व, दक्षिण और पश्चिम किसी ओर नजर दौड़ाइये, ईश्वर की उत्कृष्ट विभूति का अद्वितीय चित्र दीख पड़ता है। क्या इस पृथ्वी तल पर ऐसा मनोहर, ऐसा उज्वल, ऐसा अप्रतिम, ऐसा रमणीक स्थल कही और होगा ? क्या विश्वकर्त्ता से बाते करने के लिये ऐसा एकान्त स्थान कही और है ? जिन आर्य-वीरो ने हिमाचल की प्रशसा मे सैकड़ो ग्रन्थ बना डाले, वे प्रभु की रचनाशक्ति के रहस्य से अवश्य कुछ न कुछ परिचित थे। हिम से ढकी हुई चोटियां एक दो नही—बीस, तीस, चालीस, पचास, साठ, सत्तर—इस छोटे से भूमि के टुकड़े मे हीरे के नगो की मानिन्द जड़ी हुई है, प्रभात के भानु की रश्मियां जिस समय इन पर्वतो पर पड़ती है, उस समय की अलौकिक छटा क्या कोई लेखनी से चित्रित कर सकता है ? उस निर्दोष चित्रकार के कौशल की लावण्यता को वर्णन करने की शक्ति मनुष्य मे कहां, यहां तो– "न शक्यते वर्णयितु गिरा तदा—" वाली बात है।

उन आर्यो को सचमुच सुन्दरता की परख थी, जिन्होने इन स्थानो पर आकर अपने परम पुनीत मन्दिरो की स्थापना की और अपनी भावी सन्तान को इधर की यात्रा का माहात्म्य बताया। गर्दन तक विषयो की कीच मे डूबा हुआ व्यक्ति भी इस भूपृष्ठ पर आकर ईश्वरीय अलौकिक शक्ति का गुणगान

किए बिना न रहूंगा। प्राचीन ऋषियों ने जो इधर की भूमि को तपोभूमि कहा है, सो सर्वथा सत्य है। कमजोर, दुबला पतला मनुष्य इधर आही कैसे सकता है और यदि आवे भी तो उसको बिना परिश्रम किये भोजन कैसे मिलेगा। इसके अतिरिक्त ध्यानावस्थित होकर मन को एकाग्र करने के लिये इधर से अच्छा स्थल और कहां? सामने नन्दा देवी अपनी सखियों के साथ साभिमान खडी प्रभु का गुण गान कर रही है। उसके नीचे की ओर त्रिशूल के दर्शन होते है, जिसकी तीनो चोटिया बाइस हजार फीट से अधिक ऊची है। इनके पास ही नन्दकोट २२५३० फीट ऊचा भारत की जयध्वनि कर रहा है। नन्दादेवी के पूर्व की ओर पचाचूली अपनी पाच सहेलियों के साथ क्रीड़ा कर रही है। कई और ऊची २ चोटिया इसके आस पास पूर्व मे है। नन्दादेवी के पश्चिम मे श्रीकेदारनाथ जी, श्रीबद्रीनाथ जी आदि पर्वतो की प्रसिद्ध चोटियां है। हजारो यात्री प्रत्येक वर्ष इन तीर्थों की यात्रा कर अपने को धन्य मानते है। यदि हमारे पूर्वज इन स्थानो को पवित्र न ठहरा जाते, तो भारतीय सर्वसाधारण बेचारे प्रकृति के इन रम्यस्थानो को देखने से वञ्चित रह जाते।

सचमुच वह समय भारत के लिये बड़े गौरव का था, जब निष्काम कर्म करने वाले ऋषि लोग इस तपो भूमि मे बैठकर मनुष्य जाति के उपकार के उपाय सोचा करते थे, जब मातृभूमि के नाम की रक्षा करने वाले क्षत्री इन जङ्गलो मे आकर निर्भय घूमते थे, जब शुद्ध बौद्धधर्म के प्रचारक भिक्षु इन कठिन घाटो को पार कर अपने पूज्य गुरु का सदेश सुनाने के लिये इधर तिब्बत मे आया करते थे। अहा! वह समय कैसे आनन्द का रहा होगा। कैसे निष्कपट, कैसे निरीह,

कैसे सत्यवादी, कैसे सहासी वे भारतीय होंगे, जिन्होंने इन घाटों को केवल अपने कर्तव्य पालनार्थ पार किया था। किसी वाणिज्य लोभ से नहीं, किसी कुटिल नीति की चाल से नहीं, किसी राजनैतिक विजयपताका उड़ाने के लिये नहीं, बल्कि उस निःस्पृहप्रेम के वशीभूत होकर वे आए थे, जो प्रेम प्राणिमात्र को अभय प्रदान करता है। प्यारे आर्यवीरो! यद्यपि आपके उन आदर्श चरित्रों को हुये बहुत काल बीत गया, किन्तु आज भी हिमालय के श्वेतभवन में आपकी उज्वल कीर्ति की वे ध्वजाये फहरा रही हैं। समय आने वाला है, जब कि भारत सतान उन ध्वजाओं पर लिखे हुये इतिहास से अपना सम्बन्ध स्थिर करेगी और अपने जीवन को स्वाभाविक बना अपने प्राचीन पथ का पुनः अनुसरण करेगी।

वह देखो, प्रबुद्ध भारत दूर से अपने कीर्ति स्तम्भों को देख रहा है। उसकी आखे इन ध्वजाओं पर लगी हुई है। वह देखता है कि संसार की सब ध्वजाओं से उसकी प्राचीन ध्वजा सबसे ऊंची है; वह सबके ऊपर है। तो क्या वह कभी नीचा रहेगा? कभी नहीं। उसने अपने उद्देश्य को देख लिया, उसने अपने निशान को समझ लिया। प्रबुद्ध भारत क्या कहता है—

"मेरा भारत सब से श्रेष्ठ है; वह मुझे सब से प्यारा है।"

क्या वह अपने पूज्य भारत को इस प्रकार से ऊंचा किए बिना मानेगा? कदापि नहीं। सैंकड़ों वर्ष हुये वह युद्ध में गिर गया था; उसने आंखें बन्द करली थी। उसने समझ लिया था कि उसका झण्डा गिर गया और वह परास्त हो गया। वह शताब्दियों के बाद आंखे खोलता है, किस लिये? ताकि

उस पवित्र झण्डे के फिर एक बार मरते समय दर्शन कर ले। लो ! वह क्या देखता है ? सामने, उसका पूज्य झण्डा अभी तक खड़ा लहरा रहा है और भारत का द्वारपाल अपने दलबल सहित उसकी रक्षा कर रहा है। उसके आनन्द की सीमा नही, उसके हर्ष का ठिकाना नही, क्यो न हो, सिपाही की हारजीत अपने राष्ट्रीय झण्डे के गिरने या खडे रहने पर निर्भर है। अपने झण्डे को फहराता देख भारत मे जान आ गई है, वह अपनी शक्तियों को समेट रहा है वह अपने लक्ष्य की ओर टकटकी लगाए देख रहा है।

गगनारोही इस घाटे पर खड़ा होकर मै प्रबुद्ध भारत की हर्ष ध्वनि सुन रहा था। उसका मधुर आलाप मेरे कान मे आरहा था। मैंने सुनकर सप्रेम प्रभु को धन्यवाद दिया। उस सर्वशक्तिमान की अपार दया से ही हमारा झण्डा अब तक फहरा रहा है। ईश्वर की इच्छा है कि यह प्रेम-पताका फिर संसार मे लहरावे और भारतीय भिक्षु पुनः अपने धर्म के पवित्र सन्देश को ससार मे फैलाकर मनुष्य मात्र मे शान्ति की स्थापना करे।

पाठक महोदय, कुङ्गरी विङ्गरी के इस घाटे से आपको हिमाचल का श्वेत भवन भली प्रकार दिखा दिया; आपने उसकी सुन्दरता भी देखी, नन्दा देवी और परशुराम जी के दर्शन भी किये। अच्छा, अब तिब्बत मे चलने के लिये तैयार हो जाइये। चलने से पहिले भारत जननी को श्रद्धापूर्वक नमस्कार कीजिए, "धन्य भारत! धन्य भारत!! धन्य भारत!!!" की हर्ष ध्वनि से माता का आनन्द बढ़ाइये। जननी जन्मभूमि से आज्ञा लेकर अब हम तिब्बत मे प्रवेश करते है।

तृतीय खण्ड

पुण्यतीर्थ कैलाश और मानसरोवर के दर्शन

भारतवर्ष की उत्तरीय सीमा, कश्मीर से लेकर आसाम तक, एक लम्बे देश से घिरी हुई है इसी को तिब्बत कहते है। तिब्बत चीन के आधीन है और इसका शासन भार लामाओ के हाथ मे है। जैसे हमारे यहां धनिक अथवा राजालोग मन्दिरो के साथ उसका खर्च चलाने के लिये गांव लगा देते है, मालूम होता है ऐसे ही तिब्बत भी चीन राज्य की ओर से धर्मखाते मे दान किया हुआ है। तिब्बत के विषय मे संसार का शिक्षित समुदाय बहुत कम जानता है। "तिब्बत" इस शब्द के उच्चारण करते ही ऊंचाई, बौद्धधर्म और लामा—ये तीन संस्कार मन मे घूमने लगते है। तिब्बत को कहां से जाना होता है? उसका जल वायु कैसा है? किस प्रकार के लोग वहां बसते है? शासन प्रणाली कैसी है? देश की भौगोलिक स्थिति क्या है? इन विषयों का कुछ भी ज्ञान हम लोगो को नही। तिब्वत कहीं ऊंची जगह पर है, बस यह संस्कार मन मे है। बहुत कम शिक्षित भारतीय यह जानते है कि हमारे देश के सैकड़ो व्यापारी भिन्न भिन्न रास्तो से प्रत्येक वर्ष तिब्बत जाते है। अधिकांश तो यही समझते है कि तिब्बत महात्माओं के रहने की जगह है और वहां सैकड़ों वर्षो के पुराने योगी लोग रहते है, वहां कोई कलयुगी पुरुष जा नही सकता। इस प्रकार के विचित्र संस्कार उस देश के विषय मे हमारे अन्दर फैले हुये है।

तिब्बत की उच्च-स्थली (Tableland) ससार मे सब से ऊची है। इधर हमारा गङ्गा जी का मैदान समुद्री तल से कुछ ही ऊचा है। इसके आगे उत्तर मे पहाड़ियां छः हजार फीट ऊची है, इसके आगे बढ़ते बढ़ते १८००० फीट तक हिमालय की दीवार ऊची होती जाती है, जिसके इर्द गिर्द पांच छः हज़ार फीट ऊची गगनारोही बर्फानी चोटियां आकाश को स्पर्श करने की चिन्ता कर रही है। इसके आगे धीरे २ नीचा होता जाता है। हिमालय की दीवार से तिब्बत आरम्भ होता है और शनैः शनैः पांच हज़ार फीट नीचे होकर १३००० फीट की ऊचाई पर आजाता है। यहां से भूमि फिर धीरे २ ऊची होनी शुरू होती है और पहुंचते पहुंचते १७००० फीट की ऊंचाई की खबर लेती है। वहां से क्यूनलून पर्वतमाला का आरम्भ होता है, जो २०००० फीट से अधिक ऊंचा है। यही तक तिब्बत है, इसके आगे चीनी तुरकिस्तान है, जिसकी ऊंचाई २००० फीट है। इसके आगे रूस का साइबीरिया है, जो हमारे गगा जी के मैदान की तरह समुद्री तल से कुछ ही ऊंचा है। इस प्रकार शून्य से आरम्भ करके, चीनी तुरकिस्तान से आगे क्यूनलून की २०००० फीट से अधिक ऊंची पर्वतमाला से लेकर हिमालय की १८००० फीट पर्वतमाला तक तिब्बत का देश है, जिसकी ऊचाई कही भी १३००० फीट से कम नही। यह देश सब प्रकार की धातुओ से परिपूर्ण है, सोने की खाने भी बहुत हैं। नमक सुहागा तो 'अति' से भी अधिक है। अनाज कही २ जहां घाटी हो जाने से कुछ उष्णता मिल जाती है, थोड़ा बहुत हो जाता है। झीले इस प्रदेश मे बहुत है, जिनकी प्राकृतिक शोभा अतुलनीय है। बड़ी बड़ी नदिया, जैसे सिन्धु, सतलुज, ब्रह्मपुत्र यही से निकल कर भारत मे आती है। सरदी इस देश

मे बहुत पड़ती है । जौलाई के महीने मे मै ग्यानिमा मडी मे छः छः कम्बल ओढ़कर सोया करता था।

इस विचित्र देश के निवासी हुणिये कहलाते हैं । वे (Nomadic) घुमक्कड़ है। रमते रामो की तरह एक जगह से दूसरी जगह घूमते रहते हैं। ये एक स्थान पर घर नही बनाते बल्कि जहां अपने पशुओ के लिये घास पाते है, वहीं हज़ारो भेड़, बकरी और याक लेकर जम जाते है। याक चवरगाय का तिव्बती नाम है। चवर गाय खूब दूध देती है। यह देखने मे भद्दी मालूम होती है, पर इस देश मे यह बड़े काम का पशु है। बड़े बड़े लम्बे बाल इसके शरीरपर होते है। ये लोम ही इसके सच्चे मित्र है। इसकी पूछ बड़ी सुन्दर और गुच्छेदार होती है; उसी का चवर बनता है। पशु के मरने पर उसकी मूछ काट लेते है। यहां के प्रत्येक पशु के शरीर पर सुन्दर नरम पशम होती है। घास इधर बहुत अच्छा होता है, पशु उसको खाकर खूब मुटाते है।

पश्चिमी तिव्बत मे रुदोक नाम की एक मण्डी है। इधर भी व्यापारी लोग गरमियो मे इकट्ठे होते है । यह स्थान लद्दाख और कोराकोरम पर्वतमाला की ऊर्ध्व भूमि के निकट है। कराकुरम की सब से ऊची चोटी "गाड़विन आसटिन" २८२५० फीट ऊची है और मौन्ट एवरिस्ट को छोड़कर ससार के सव पर्वतों से ऊंची है। इसके उत्तर मे अति शीत निर्जन रेगिस्तान है, जिसको चग कहते है। क्यूनलून इसी के उत्तर मे है । इस क्यूनलून पर्वतमाला मे यद्यपि घाटे तो है, पर ऐसे विकट है कि मनुष्य का उधर गुज़र नही हो सकता। वे घाटे बारह महीने हिम से आच्छादित रहते है। इन घाटो से निकल कर यदि कोई आगे बढ़े भी तो रास्ता और भी भयंकर

रूप धारण करता है। नदियों के बाहर जाने के लिये मार्ग नहीं, इसलिये जगह जगह झीलें हैं और उनका जल नमकीन होता है। सोड़ा, नमक और शोरा स्थान २ पर पाया जाता है, वृक्षों का सर्वथा अभाव है और मनुष्य वहाँ रह नहीं सकता। सोने की खानें बहुत है, पर उसको निकाले कौन ? प्रकृति ने निज मायावी ढंग से इन खानों को सुरक्षित कर रक्खा है। काशगर से आनेवाले यात्री कराकोरम के १८५५० फीट ऊंचे घाटे को पार करना अच्छा समझते हैं, किन्तु क्यूनलून की ओर मुंह नहीं करते। मध्य एशिया के व्यापारी, लीह के रास्ते, लासा जाते हैं, या गरतोक के रास्ते कैलाश और मानसरोवर होकर तिब्बत की राजधानी में पहुंचते हैं। गरतोक से रुदोक जाने में आठ दस पडाव पड़ते हैं, रुदोक की तरफ से अच्छे २ घोड़े गरतोक में बिकने आते हैं और नमक भी उधर बहुत होता है, आबादी भी अधिक है। रुदोक के आस पास जौ की खेती होती है।

पूर्वी तिब्बत के विषय में हम लोग बहुत कम जानते हैं। पश्चिमी तिब्बत, जहां मैं गया था, के विषय में कुछ पुस्तकें अंग्रेजी में निकली हैं और तिब्बत के इसी भाग के साथ हमारा अधिक सम्बन्ध भी है। श्रीकैलाश और मानसरोवर पश्चिमी तिब्बत में ही हैं। हमारे अधिक व्यापारी इधर ही व्यापार करने जाते हैं, इसलिये इसी का कुछ व्योरा लिखने की आवश्यकता भी है। इधर गरतोक में राज्य कर्मचारी गरमियों में आकर रहते हैं। यहां सेप्टेम्बर में जब मण्डी होती है, तो भोटिए, लद्दाखी, कश्मीरी, तातारी, यारकन्दी, लासा के रहनेवाले तथा चीनी व्यापारी भी आते हैं। गरतोक में बड़ा शीत पड़ता है। सरदियों में वहां कोई भला-

मानस, रह नहीं सकता; डाकुओ का बड़ा भय रहता है। वे भयानक रूप बनाए हुये यात्रियो और व्यापारियो की ताक मे घूमा करते है। उन्हीं के डर के मारे जोहारी लोग इकट्ठे बदूक आदि शस्त्र लेकर चलते है। इन डाकुओ के पास बाबा आदम के समय के पुराने हथियार रहते है। वे उन्ही को बड़ा हथियार समझ कर, उन्हीं से यात्रियो को धमका कर, सब कुछ रखवा लेते हैं। भोटिआ लोग बेचारे किसी न किसी प्रकार अपना प्रबन्ध करते है, किसी किसी के पास लाइसेन्स भी है।

तिब्बत का शासन-भार लामाओ के हाथ मे है। सब से बड़ा लामा ताशीलामा कहलाता है, पर ताशीलामा को इतना अधिकार नही। देश का सारा शासन दलाई लामा के हाथ मे है। वही तिब्बत का सर्वेसर्वा—जिसको चाहे मारे, जिस को चाहे रखे। दलाई लामा ही तिब्बत निवासियो का ईश्वर स्वरूप है और वे अपनी प्रार्थना में—"ओम माने पद मे हूं"—कहकर उसकी पूजा करते हैं, क्योकि उनकी समझ के अनुसार दलाई लामा बुद्धदेव का अवतार है और वह जीवन-मरण के दुखो से छुड़ा सकता है। तिब्बत मे यह मन्त्र स्थान स्थान पर दीवारो और पत्थरो मे खुदा हुआ है, छोटे बड़े सभी इसका दिन रात जाप करते हैं; भिन्न भिन्न प्रकार के शब्दो से इसको रटते है और यही समझते है कि यह मंत्र सब व्याधिओ का इलाज कर देगा।

दलाई लामा के अधीन बहुत से कर्मचारी शासनकार्य्य मे उसकी सहायता करते हैं। उनको गरफन, जोंगपन और तरजुम कहते हैं। किसी समूचे प्रान्त का वाइसराय गरफन कहलाता है और ज़िलों के हाकिम जोंगपन और तरजुम

पुकारे जाते हैं। इनको अपने जिले का प्रबन्ध करना, लम्बी लम्बी सजायें देना; अपराधी के अङ्ग कटवा डालना आदि शक्तियां प्राप्त हैं। लासा का प्रधान लामा इन कर्मचारियों की नियुक्ति करता है। सब से बड़ा हाकिम गरफन, उससे नीचा जोगपन और उससे छोटा कर्मचारी तरजुम हैं। तरजुम अपने अधिकारों में जोगपन से कम नहीं होता। ये अधिकारी दलाईलामा की स्वीकृति से, तथा अपने पदों को खरीद कर नियुक्त होते हैं। प्रत्येक तीसरे या पांचवें वर्ष से इन राज्यपदों की लासा में नीलामी होती है, जो सब से अधिक रुपया देता है वही उन पदों का अधिकारी है। फिर वह अधिकारी अपनी प्रजा पर मनमाना टैक्स और दण्ड लगा सकता है।

पश्चिमी तिब्बत का वाइसराय गरतोक में रहता है। साल के साल यहां बड़ा भारी मेला लगता है और बड़ी मन्डी भरती है। दूर दूर से व्यापारी यहां आते हैं। यह मेला सेप्टेम्बर भर रहता है। लाखों रुपये का व्यापार यहां होता है। इर्द गिर्द के सब कर्मचारी—जोगपन और तरजुम—यहां आते हैं। जाड़ों में यहां अधिक शीत होने के कारण गरफन गरगुसा चला जाता है। यह सिन्धु नदी के तट पर है।

गरतोक के दक्षिण पश्चिम में तोलिङ्ग नामी विशाल मठ है। यहां का लामा धार्मिक गुरु होने के कारण गरफन जैसे ही अधिकार रखता है, बल्कि कई अंशों में उससे ऊंचा है। जब कभी वह गरतोक जाता है तो वाइसराय महोदय को उसका स्वागत करना पड़ता है। तोलिङ्ग मठवाला लामा दलाई लामा को ही अपना हाकिम समझता है, इसलिए कभी कभी दोनों उच्च अधिकारियों की आपस में चख़ चख़ हो जाती है।

भारतवर्ष से पश्चिमी तिब्बत में प्रवेश करने के कई एक मार्ग हैं। उनके द्वारा जो आमदनी होती है उसे जोगपन अधिकारी बांट लेते हैं। जो व्यापारी टिहरी अथवा गढ़वाल के लीलांग और माना घाटो से हो कर तिब्बत जाते है, वे चपरंग के जोगपन को कर देते है, ऊटाधुरा और नेती के घाटो का शुल्क दाबा के जोगपन को मिलता है; लीमूलेख और नैपाली घाटो की आमदनी तकलाकोट के जोगपन को जाती है। इस प्रकार प्रत्येक घाटे का कर इन कर्मचारियों में बटा हुआ है। लामा की गवर्नमेंट को ये लोग ठेके के तौर पर रुपया देते हैं, जो नियुक्ति होने से पहले निश्चित हो जाता है। गरतोक की मंडी मे भारतीय व्यापारी कम जाते है। एक तो उनको जिकपा डाकुओ का डर रहता है, दूसरे उधर का मार्ग बहुत कठिन है और शीत अधिक होने के कारण उनके पशुओ को बड़ा कष्ट होता है। जोगपन कर लेने मे तो बड़े मुस्तैद है, पर डाकुओ को सजा देने अथवा रास्ता ठीक करवाने मे बड़े सुस्त है। प्रजा के आराम का उनको कुछ भी ध्यान नही। भारत की कुल तिजारत पश्चिमी तिब्बत के साथ चोदह लाख रुपए साल की है।

तरजुम कर्मचारी का मुख्य काम डाक का प्रबन्ध करना है। गरतोक के गरफन और लासा की गवर्नमेंट के बीच जो पत्र-व्यवहार राज्य प्रबन्ध के विषय मे होता है, उसको ठीक ठाक रखने का भार तरजुम पर है। गरतोक से लासा ८०० मील पर है। एक एक दिन क पड़ाव पर घोड़े बदले जाते है। और डाक दूसरे पड़ाव पर पहुंचाई जाती है। यदि चिट्ठी अत्यावश्यक हो तो डाकिए को घोड़े की पीठ पर बाध दिया जाता है, ताकि रास्ते मे वह कही आराम न कर सके। इन

तरजुमो के अधिकार मे भी देश का कुछ भाग ऐसा रहता है, जिस पर वे निरकुशता से हुकूमत करते है । बरखा के तरजुम के अधिकार मे राक्षसताल और मानसरोवर के इर्द गिर्द भारतीय सीमा तक की भूमि है । इसका वर्णन हम आगे चल कर करेगे ।

चौदहवां पड़ाव

तिब्बत मे प्रवेश

१४ जौलाई बुधवार—सन्ध्या हो गई । कुङ्गरी बिंगरी के उस घाटे पर मै अकेला खडा था । आप पूछेगे, अकेला कैसे ? हां अकेला । मेरे सब साथी आगे चले गये थे; वह शराबी भी आगे बढ गया, मुझे मातृभूमि से आज्ञा लेने मे देर लग गई । सब खच्चर चले गये, नौकर आगे बढ गये । वह ग़रीब घोड़ा जिसको मार मार कर ऊपर लाए थे, वही कही छोड़ दिया गया । आप कहेगे इतनी निर्दयता ? निर्दयता नही, वह घोड़ा आगे चल नही सकता था, बेचारा वही कही गिर गया, उसपर कम्बल डाल उसके स्वामी उसे वही छोड़ कर चले गए । ठहरे क्यो नही ? ठहरना कैसा, वहां ठहरना तो मानो मृत्यु के मुख मे जाना था । जब मै कहता हूं मुझे वहाँ खड़े खड़े शाम हो गई, उसके अर्थ यह है कि मृत्यु के आगमन का समय आगया । शीत ! हे परमेश्वर !! मेरे दांत बजने लगे । दिन को सूर्य्यदेव की कृपा से जियादा शीत मालूम नही हुआ । जब तक वे रहे, श्वेतभवन मे खूब आमोद प्रमोद रहा, उछल कूद मची, राग रंग रहे, अब भास्कर भानु चले गये, इस कारण श्वेतभवन मे सन्नाटा

है । सन्नाटा ! हां सन्नाटा (Death like Silence) मृत्युवत् मन्नाटा !! वह कभी भूलेगा ? कभी नहीं ।

हां, मै वहां खडा था । अकेला ? बिलकुल अकेला ! इधर बर्फ, उधर बर्फ; सामने बर्फ, पीछे बर्फ, चारो ओर बर्फ ही बर्फ दिखाई देती है । जो हिम दिन के समय बड़ी नरम, लचलचाती, मन्द मुसकान करती थी, इस समय उसने कठोर रूप धारण करने की ठानी है । इसका कलेजा पत्थर सा हुआ जाता है; दया मया सब भाग रही है । बर्फ पर से पांव फिसलता है, हिम मुझसे आलिंगन करना चाहती है । मै बड़ी नम्रता से हाथ जोड़ उससे क्षमा मांगता हूं । बड़ी कठिनाई से छोड़ती है । चला, मैं चला; जोर से पाव उठाता हूं । सामने अन्धकार है; मेरा खच्चर भी दिखाई नही देता । उीः ! जाड़ा !! मेरे ईश्वर ऐसा जाड़ा !!! मोटा ओवरकोट पहनने पर भी कैसा जाड़ा लगता है । उतार आगया, तेज़ जा रहा हूं, तेज, तेज, तेज; साथियों को आवाज़ देता हूं । उनकी आवाज नीचे दूर इस सन्नाटे मे आ रही है ; वे मुझे बुलाने है । तेज़ चला । सामने घाटी है, उसके आगे पहाड़ी ; दहिने हाथ ऊचा पर्वत है, पीछे कुङ्गरी बिंगरी । नीचे नीचे उतर रहा हूं । मेरे साथी कुछ कुछ दिखाई देने लगे है ; वे मुझे बुलाते है, मेरा खच्चर लिए खड़े हैं । उनके पास पहुंच गया । धन्य प्रभु ! धन्य !! धन्य !!! मौत से बच गया ।

यहां आने पर मालूम हुआ कि विजय सिंह जी अभी नहीं आए । हम लोग चल पड़े। थोड़ी दूर ही गये थे कि पीछे विजयसिंह जी की आवाज़ आई । वे आगये । मालूम हुआ कि वे उस घोड़े को किसी गढ़े में ले गये थे ताकि रात को वह

सरदी मे वच मकें। उसपर कपडे डाल वहीं कहीं गढे में छोड आए थे। उसके वचने की कोई आशा न थी।

विजयसिंह जी तेजी मे आगे निकल गये, मैं दो साथियों के साथ पीछे धीरे धीरे आता था। बिलकुल अंधेरा होगया। किसी जीवजन्तु की आवाज सुनाई न देती थी, केवल हमारे चलने का शब्द और किसी छोटे पहाडी नाले की धीमी धीमी "गरगर" कान मे आती थी। इस प्रकार चलते चलाते पांच छः मील जाने पर सामने आग दिखाई दी। उसी की ओर चले। पहाडियो के घुमाव फिराव के चक्कर काटकर चिरचिन पहुंचे, यहां हमारा डेरा था; सब पशु मनुष्य पहुंच गये थे; आग जल रही थी, और भी व्यापारियों के डेरे यहां थे। मै अपनी छोलदारी मे घुस गया। मेरा बिस्तरा लगा हुआ था। विजयसिंह जी बेचारे तो सरदी के मारे परेशान थे। उन्होंने चाय बनवा कर पी; मैंने कुछ सूखे फल खाये। नौकर बेचारे थके हारे थे, इस लिए उनको कष्ट देना उचित नही समझा। उन्होने आशा दिलाई कि सबेरे पेट भर भोजन करावेंगे। रात को सरदी! गजब का शीत था। सब कपडे ओढे हुये, चार पांच कम्बल डालने पर भी बदन गरम नही होता था। खैर किसी प्रकार रात काटी।

१५ जौलाई बृहस्पतिवार—सबेरे धूप चढने पर उठे। विजयसिंह जी से बाते करते करते मालूम हुआ कि दो आदमी अपनी मूर्खता मे कुङ्गरी बिंगरी के नीचे सरदी मे अकड कर मर गए। हम लोगो पर ईश्वर की बडी दया रही। यदि कही रास्ते मे ठहर जाते, या बर्फ गिरने लगता तो न जाने क्या हो जाता। परमात्मा को धन्यवाद दिया।

धूप निकलने पर मै पाल से बाहर निकला। लोटा लेकर शौचादि से निवृत्त होने के लिये चला। इर्द गिर्द दृष्टि दौड़ाने पर पता लगा कि हम लोग एक वर्फानी पहाड़ के पास ही पड़े हैं। वह ग्लेशियर हमारे बिलकुल निकट था। मै पास की नदी मे स्नान करने के लिये गया। जल बड़ा ठण्डा यख था। उसके किनारे बैठकर मैंने अपने सब कपडे धोए, बिलकुल नगा होकर नदी मे स्नान किया। वहां कोई मुझे देखने वाला न था। मै था, मेरे सामने सूर्य भगवान, इर्द गिर्द पहाड़ियां— बम खूब स्नान किया। धूप कैसी सुखदा प्रतीत होती थी। वाह! वहा!! क्या आनन्द है। आकाश भी निर्मल था।

स्नानादि से निपट कर मैंने भोजन किया। रोटी, शाक, गरमागरम—क्या ही स्वादिष्ट था। भोजनोपरान्त सब चल पड़े। ग्यारह बजे होगे। इसी नदी के किनारे किनारे बाते करते हुए जारहे थे। यात्रा का जो डर था वह निकल गया, हिमालय पार कर लिया, अब तिब्बत के ऊंचे नीचे मैदानो का सफर कुछ भी कठिन नही था। धूप का आनन्द लेते हुये उस नदी के किनारे जारहे थे। नदी मे जल बहुत कम था, शायद वर्षा मे चढ़ती होगी।

चिरचिन से चार मील पर तुकपु है, वही पहुंचे। तुकपु छोटी मण्डी है। यहां तिब्बतिओ के कई खेमे गड़े थे। वे अपनी भेड़ो को गिनगिनकर इधर उधर कर रहे थे; साथ साथ गाते भी जाते थे। अच्छी सी जगह देखकर हम लोगो ने भी डेरा डंडा डाल दिया। आज यही रहने का विचार था। इसलिए सब खच्चर खोल दिये गये और उनको चरने के लिये छोड़ दिया। दो पाल खड़े कर उनके इर्द गिर्द माल की

गठरियां चिन दी गईं ताकि हवा अन्दर न घुसने पावे। एक पाल मेरे और विजयसिंह जी के लिये था और दूसरे मे खाना बनता था; उसी मे नौकर भी रात को सोते थे।

विजयसिंह जी चूंकि प्रसिद्ध व्यापारी थे इसलिए बहुत से हुणिये अपनी चोन्दियां फटकारते हुए इनसे मिलने के लिए आए। जो कोई मिलने आता उससे विजयसिंह जी तिब्बती भाषा मे—

"खमजम! भो खमजम!!"

कह कर स्वागत करते। जैसे हम लोग परस्पर मिलने पर कुशल मगल पूछते है, इसी तरह तिब्बती लोग "खमजम" कह कर अपना वही आशय पूरा करते है। पाल मे हुणिओ की भीड़ लग गई। मै मृगचर्म बिछाकर बैठा हुआ था। मेरे विषय मे पूछ ताछ करने पर जब विजयसिंह जी ने उनसे कहा—

"काशी लामा! काशी लामा!!"

तो सब बड़ी श्रद्धा से मेरी बाते सुनने के लिये उत्सुक हो उठे। प्रेमी खड्गराय भी आगये थे, उन्होने दुभाषिये का काम किया। खूब धर्म सम्बन्धी बाते हुईं। ये लोग बड़े श्रद्धालु होते है, भूत, प्रेत, जादू टोना आदि सब मानते है, अपने दलाई लामा को बड़ा शक्तिशाली समझते है। शिक्षा का इनमे बिलकुल अभाव है। प्राय. सब हथियार बांधते है, पर वही पुराने भद्दे शस्त्र। नये नये आविष्कारो के विषय मे ये लोग कुछ नही जानते, संसार की सभ्य जातियो का बहुत कम हाल इन्हे मालूम है। जब से जापान ने रूस को पछाड़ा है, तब से कुछ कुछ योरुपीन सभ्यता की चर्चा इनमे होने लगी है। चीन की दशा भली प्रकार सुधरने के बाद इधर भी जागृति होने की पूरी आशा है।

एशिया के जगने के कुछ कुछ चिन्ह तब इधर भी दिखाई देने लगेंगे, अभी तो पूर्व के केवल झोंके लग रहे है।

हुणिए व्यापारी प्रायः भेड़ों की खालो के बक्खू पहनते है—बाल अन्दर की ओर और चमड़ा बाहर की तरफ, इस प्रकार के लम्बे कोट का फैशन है। धूप मे उस बक्खू से एक बांह बाहर निकाल शरीर का ऊपर का भाग नगा कर घूमते रहते हैं। इनके बदन मे दुरगन्ध आती है। एक हुणिआ मेरे सामने बैठा हुआ था। बैठे बैठे उसने जमीन पर थूक दिया। मैंने दुभापिये से कहा कि इसको समझा दो कि यहां न थूके। दुभापिये के समझाने पर उसने उस थूक को मिट्टी सहित उठा कर अपने बक्खू पर डाल लिया। उसकी बुद्धि के अनुसार यही सभ्य शिष्टाचार था। मै उसे क्या कहता, उस बेचारे को जो ठीक जंचा वही उसने कर दिखाया।

दिन भर हवा चलती रही। इधर बड़े जोर से हवा चलती है। विजयसिंह जी तो अपने व्यापारियो से मिलने मिलाने मे लगे रहे। ये हुणिए ग्यानिमा मण्डी न जाकर इधर ही चले आये थे। इनको पता लगा था कि भारत मे इस वर्ष अनाज की कमी है, सभव है अनाज मिले न मिले, इसलिये ये लोग भोटिये व्यापारियों को रास्ते मे ही मिलने आये थे, ताकि ठीक ठाक करके पहले ही अनाज खरीद लें। ग्यानिमा पहुंचने पर शायद अनाज बिक बिका जाए, इस कारण बेचारे घबराये हुए रास्ते में डेरा किये पड़े थे। तिब्बत मे इस वर्ष मौसम अच्छा था। भेड़ों की ऊन खूब हुई थी। कई भोटिये व्यापारियो ने अपना माल यहीं पर बेच वारे न्यारे कर लिए और यही से नमक सुहागा बदले मे लेकर वापिस घर जाने की ठानी। कई

साहूकारो ने माल खरीद कर, अपनी भेडो, झब्बुओ पर लदवा, नौकरो के साथ भारत भेज दिया और नौकरो को जल्द लौट आने की ताकीद कर दी। इस प्रकार बहुत से व्यापारियो का सौदा रास्ते मे ही हो गया, यही तुकपु मे ही उन्होने अपनी भेड़े झब्बू लाद लिये।

दो साधारण ऊची पहाड़ियो के बीच मे तुकपु नाम की यह मण्डी है। तुकपु नदी के किनारे होने से इसकी यह सज्ञा हो गई है। यहा कोई पक्का मकान मैने नही देखा। डुणिओ के खेमे छोलदारियां लगी थी, बस इन्ही के कारण यह बस्ती बन गई थी। जहां चौरस भूमि, जल निकट और घास का सुभीता हो, वही छोटे छोटे पाल खड़े करने से तिब्बतिओ का ग्राम बस जाता है। जब जरा ऋतु प्रतिकूल होने लगती है तब ये अपने पाल उखाड कर पशुओ पर लाद लेते है और किसी दूसरे स्थान की ओर चल देते है। इसी प्रकार की यह तुकपु मण्डी समझ लीजिये। इर्द गिर्द पहाडियो पर घास बहुत थी। पशुओ को इन दिनो तिब्बत मे बड़ा सुख मिलता है, अच्छी सुन्दर घास खाकर वे खूब उछलते कूदते है।

सध्या के समय मै नदी के किनारे गया। जल कम था। नदी चौड़ी है। किनारे के पास जल भूमि मे से फूट फूटकर निकल रहा था। तिब्बतिओ को शौच जाते देखा। ये लोग अपने अग साफ करने के लिये जल का प्रयोग नही करते। हम लोग जो गरम देश के निवासी है, इन की इस आदतको बड़ा बुरा समझ इनसे घृणा करते है। स्पष्ट बात यह है कि इनकी इस आदत का कारण यहां का अति शीत है। मनुष्य जैसी जैसी हालतो मे रहता है, जिस जिस प्रकार की ऋतुओ का उसे सामना

करना पड़ता है, वैसे ही उसका स्वभाव और रहन सहन हो जाता है। यह बात अवश्य है कि शिक्षा से उसमे बहुत कुछ परिवर्त्तन हो सकता है, किन्तु इर्द गिर्द की प्राकृतिक दशाओ का प्रभाव बिलकुल दूर होना असम्भव है। इस देश मे जहां वर्ष मे केवल तीन महीने हिम से छुटकारा मिलता है, लोग जल से कैसे प्रेम कर सकते है? इन दिनो जौलाई के महीने मे हमारे पूष माघ से कही अधिक शीत यहां पर था। एक तो तिब्बत की ऊंचाई कहीं भी १३००० फीट से कम नही, दूसरे इसके चारो ओर हिमावृत पर्वतो की चोटियां, फिर भला यहां के निवासी गरम देश वालो की तरह जल को कैसे अपनाये? यह हो नहीं सकता।

रात को कुछ काल तक भजन होते रहे। यहां की स्वतत्र भूमि मे किसी टिकटिकी का 'भय' तो था ही नही, मैंने शुद्ध और स्वच्छन्द वायु से अपने फेफड़ो को भली प्रकार भर लिया। रात्रि बड़े सुख से कटी।

पन्द्रहवां पड़ाव

गुणवन्ती के किनारे

१६ जौलाई शुक्रवार—सबेरे उठकर चले। तुकपु नदी पार कर उत्तर पूर्व की तरफ हो लिये। धीरे धीरे धूप सेकते हुये खच्चरो पर जा रहे थे। एक पहाड़ी पर चढ़े, उस पर वर्फ पड़ी हुई थी। यहां हमे दो चार बादलो ने घेर लिया। थोड़ी देर मे धुनकी हुई रुई की तरह हिम ऊपर से आने लगा। अमरीका छोड़ने के बाद आज फिर इन रुई के गालो का मजा मिला।

घूमते घामते, पहाड़ियो के मामूली उतार चढ़ाव देखते हुये, एक बड़ी घाटी मे घुस गये। यहाँ डाकुओ का डर रहता है, इसलिये सावधानी से इधर उधर देखते भालते आगे बढ़े। घास और पौधे यहां बहुत थे। खच्चरे चलती चलती इनमे मुंह मार लेती थी। नरम नरम घास के दो चार ग्रासो से मुह भर लिया और दौड़ पडे। रास्ते मे कही किसी प्रकार की आबादी देखने मे नही आई। पहाड़ियां, पर्वती नाले, घाटे और सोते देखते हुये दस बजे के करीब ठाजग पहुंचे। यहां दो चार डेरे थे, बाकी भोटिया व्यापारी आगे चल दिये थे। एक पानी के सोते के पास ढेरा डाला। रात भर यही रहे; खूब सरदी थी।

१७ जौलाई शनिवार—भोर होते ही यहां से चले। इस घाटी से निकल कर, जब ऊपर पहाड़ी मैदान मे आये तो पीछे और दहिने हिमालय की श्वेत चोटियो की कतार क्या भली मालूम होती थी। ऐसा रमणीक भूप्रदेश मैने पहले कभी न देखा था। हिमालय की पर्वत माला का ऐसा विचित्र सौन्दर्य तिब्बत से ही देखा जा सकता है। मैदान मे खड़े होकर सामने दृष्टि दौडाइये, दक्षिण की ओर पूर्व से पश्चिम या पश्चिम से पूर्व जिधर आपका मन चले, उधर ही हिमालय की पर्वत-माला दौडती हुई बोध होती है। बर्फानी चोटियां बराबर एक के बाद एक सूर्य के प्रकाश मे जगमग जगमग कर रही हैं। नैपाल, व्यास, चौन्दास, दारिमा, कुङ्गरीबिङ्गरी, बलच, शेलशेल, नेती और माना के घाटे सब अपनी अपनी जगह पर दिखाई देते है। यहां किसी बड़े कुशल चित्रकार की आवश्यकता है। ऐसा सुन्दर सुहावना विशाल चित्र हिमालय का शायद ही कही से दीख पडे। प्यारे पाठक, यदि आप केवल इसी विचित्र चित्र का आनन्द लाभ करने के लिये यहां की यात्रा का कष्ट उठावे,

ा मै आपको विश्वास दिलाता हूं कि आपकी यात्रा सार्थक
हो जायगी ।

शुद्ध निर्मल जल की नदी पार कर छिनकु पहुंचे । छिनकु ठाजग से चार मील होगा, यहां बहुत से पाल खड़े थे । दुणियों की भेंडें भां ! भां !! कर रही थी । नदी के स्वच्छ जल में स्नान करने की ठानी; बड़ा आनन्द आया । आज डण्ड पेल कर व्यायाम भी किया ।

मीलम से जो यात्री मुझसे पहले चल पड़े थे, वे यहीं से तीर्थपुरी होकर जाने वाले थे । यहां से तीर्थपुरी को सीधा रास्ता जाता है । यद्यपि मुझे तीर्थपुरी जाना था, लेकिन मेरी इच्छा ग्यानिमा मण्डी की चहल पहल देख, अपनी कैलाश यात्रा का पूरा प्रबन्ध कर, तब उधर जाने की थी, ताकि मार्ग में खाने पीने का कष्ट न हो । अब इसके आगे भोटियों से अलग होकर यात्री को कुछ खाने को नहीं मिलता । भोटिये व्यापारी ग्यानिमा तक जाते हैं; जो अधिक उत्साही हैं वे गरतोक भी पहुचते हैं; कोई किसी कार्यवश कभी कैलाशजी भी चला जाता है, अतएव भारतीय यात्री को कम से कम पन्द्रह दिन का भोजन अपने साथ बांधना आवश्यक है । श्री कैलाश और मानसरोवर के मार्ग में भोजन छीनने वाले तो बहुत मिल जाते हैं, पर देने वाला कहीं दिखाई नहीं देता । कोई दुकान भी नहीं, जहां से कुछ खरीदा जा सके । ऐसी दशा में यात्री इकट्ठे एक दूसरे की सहायता करते हुए चलते हैं और यही उचित भी है । कुछ पहाड़ी यात्रियों ने सत्तू गुड़ भोटियों से खरीद लिया था । वे अपनी अपनी गठरी मुठरी बांध दूसरे दिन चलने को तय्यार बैठे थे । कइयों ने भिक्षा मांगकर अपनी रसद इकट्ठी की थी ।

यहां छिनकु मे उस लम्बे उदासी साधु की दुष्टता का पूरा परिचय मिला। जिन यात्रियो के साथ वह आया था, वे सब उसके हाथ से तंग थे। सब ने उसकी शिकायत की। वे उस उदासी को अपने साथ तीर्थपुरी लेजाना नही चाहते थे और वह हुर्दङ्गा उन्हीं के साथ जाना चाहता था। मेरे समझाने बुझाने पर वह रुक गया और पहाड़ी यात्री दूसरे दिन आनन्द मे अपने मार्ग पर हो लिए।

१८ जौलाई रविवार—आज सबेरे पांच चार मील चल कर एक बड़ी नदी पार की। इस नदी का नाम गुणवन्ती है। यह सतलुज की सहायक नदी है। इसी के किनारे रेत मे डेरा किया।

सोलहवां पड़ाव

ग्यानिमा की ओर

१९ जौलाई सोमवार—सबेरे चले। बड़े बड़े घास के मैदान देखने मे आये। जङ्गली घोड़े हमारे बाये हाथ दूर चर रहे थे। एक बार कुछ फासले पर मैंने तीन चार हुणिए सवारो को आते देखा। मेरे साथी भोटिये सब पीछे थे; विजयसिंह जी भी पीछे आ रहे थे। मै उन हुणिओ को डाकू समझ अपनी खच्चर रोक कर खड़ा हो गया और जब वे सौ गज़ पर रह गए तो तेजी से अपनी खच्चर को चलाकर—"खमजम ! भो खमजम !" कह कर उनकी ओर दौड़ा। वे भी 'खमजम' कह कर मेरे पास से निकल गए।

सामने दमयन्ती नदी चमक रही थी। उस के किनारे

पहुंच मैं अपने साथियो की बाट जोहने लगा। जब सब लोग आगए तो उस पहाड़ी नदी को पार किया। इस मे कमर तक जल था। खच्चर इसको आसानी से पार कर गये। आज दिनभर इसके किनारे रहे। शाम को मैं दो घन्टे नदी के किनारे बैठकर 'दमयन्ती' नदी के पत्थरो के साथ अकेला खेलता रहा। सामने तेज़ धार बह रही थी। उसको देख कर क्या क्या भाव मेरे हृदय मे उठे—

"दमयन्ती! कैसा सच्चा भारतीय नाम है। इस नाम के उच्चारण करने से सती, साध्वी, भारतीय पतिव्रता रमणी 'दमयन्ती' का स्मरण हो आता है। पतिप्रेम से विह्वल उस विदर्भ राजकुमारी की मनमोहिनी मूर्ति सामने खड़ी हो जाती है। पति विरह से आतुर वह, भारतीयबाला, अपने प्यारे नल को जङ्गल मे तलाश करने निकलती है; वह देखो, जङ्गल के निर्जल स्थल मे कामांध व्याध उसके रूप लावण्य पर मोहित होकर उसको पकड़ना चाहता है; शुद्ध पातिव्रत धर्म की तीक्ष्ण खड्ग से सुसज्जित दमयन्ती अपने प्रभु की ओर निहारती है। आहा! वह दृश्य—पातिव्रत धर्म की विजय और कामातुरता का पतन, सत्य की विजय और अधर्म का नाश—यह उपदेशप्रद शिक्षा इस एक 'दमयन्ती' शब्द मे भरी हुई है।"

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

रात को भजन कीर्तन हुआ। प्रभु के गुणानुवाद गाये; भारतमाता की विजय के लिये प्रार्थना की गई। सुख से रात बीती।

२० जौलाई मङ्गलवार—आज बहुत सवेरे उठे। सामने की पहाड़ी रात को बर्फ पड़जाने के कारण, श्वेतावरण विभूपिता, बन गई थी। आज ग्यानिमा पहुंचने का निश्चय था। यहां से

ग्यानिमा केवल दस मील है। रास्ता सीधा मैदान ही मैदान है। छोटे छोटे झाड़ो से ढके हुए मैदान मे से पगडण्डी जा रही थी। दूर तक ऐसा ही मौदान चला गया है। आगे ग्यानिमा के निकट मैदान रुण्ड मुण्ड सा था। यहां घास कम थी; शोरा अधिक है, भूमि सफेद है।

दस बजे ग्यानिमा पहुंच गये। यहां बिलकुल रद्दी, कच्चे मकानो से भी बदतर, हुणियो के कबूतर खाने बहुत से बने हुए थे। पाठक, बहुत से हमारा अभिप्राय तीस चालीस से है। यहां थोड़ी २ भूमि जुदा जुदा व्यापारिओ के लिये निश्चित है। विजयसिह जी ने अपने निश्चित स्थान पर पहुंच डेरा डाल दिया। सब सामान उतारा, जगह झाड बुहार कर ठीक की। गन्दा! शिव शिव!! इतने मैले ये लोग होते है। इनके घरो के आगे कूड़ा कर्कट, भेड़ो के सिर, बकरियो की हड्डियां, लीद, गोबर, अला वला, सब कुछ पडा था। उसी मे "खमजम! खमजम!!" कहते हुए हुणिए इधर ऊधर जा आ रहे थे।

पाठक महोदय, ग्यानिमा मे हमे कई दिन रहना है। आइए पहले आपको ग्यानिमा मण्डी का कुछ हाल चाल सुनाये ताकि आप अपने मन मे इसका चित्र खीच सके।

सत्रहवां पड़ाव

ग्यानिमा मंडी

पश्चिमी तिब्बत मे, भारतीय व्यापारियो के लिये, ग्यानिमा बड़ी मडी है। यह हमारी भारतीय सीमा से ३५ मील दूर होगी। इसके उत्तर मे तीर्थपुरी और कैलाश की पर्वतमाला, दक्षिण

मे भोट का इलाका, पूर्व मे मानसरोवर और मान्धाता पर्वत, पश्चिम मे तोलिङ्ग मठ, दाबा और नेती है। यह मण्डी ग्यानिमा के बड़े चौड़े समतल मैदान मे स्थित है। ग्यानिमा प्लेटो (अधित्यका) १५००० फीट की ऊचाई से आरम्भ होकर, धीरे धीरे १४००० फीट ढलवान की ओर सतलुज घाटी के किनारे किनारे पश्चिम की ओर चली गई है। इस अधित्यका मे पत्थर बिलकुल नहीं है; यात्री को चलने मे बड़ा सुभीता रहता है; भूमि मे से स्थान स्थान पर पानी फूटता है, इस लिये भूमि रात को बड़ी ठण्डी होती है; हिमालय की बर्फानी चोटियां भी निकट है।

यहां डेढ़ दो महीने तक मण्डी भरती है। दूर दूर से व्यापारी आते है। रामपुर-बशहरी, लद्दाखी, तुर्किस्तानी, यारकन्दी, चीनी और भूटिये व्यापारी अपना अपना माल पशुओ पर लाद कर लाते है। गधे, याक, झब्बू, खच्चर, भेड़, बकरी और घोड़े, जैसी जिसकी हैसियत हो, वैसा ही लद्दू पशु काम मे लाया जाता है। दूर दूर के भिन्न भिन्न भाषा भाषी, विचित्र वस्त्र धारण किए हुए, यहां दीख पड़ते है। सभी तिब्बती भाषा जानते है; इसमे बातचीत कर एक दूसरे के हाथ अपना सौदा बेचते है। करीब साढ़े चार लाख रुपये का व्यापार इस मण्डी मे होता है। साढ़े चार लाख रुपया क्या है? कुछ भी नही। जितना कष्ट ये लोग उठाते है, उसके मुकाबिले मे साढ़े चार लाख का व्यापार क्या है, परन्तु बात यह है कि व्यापार हो नही सकता, जहां हानि का भय अधिक और लाभ के साधन कम हों। एक तो विकट घाटो से गुज़रना, दूसरे रास्ते की सरदी, तीसरे अच्छी बनी हुई सड़क नहीं, चौथे नदियो पर पुल नहीं, पांचवें डाकुओ का भय—कोई कहां तक

हानि सह सकता है—तिस पर भी धन्य है यह लोग जो सब प्रकार के दुख सहकर अपना पेट पालने के लिये इतना उद्योग करते है। ग्यानिमा के पश्चिमी मैदान मे, जहां घाटियां है, वहां जिकपा डाकुओ का बड़ा डर रहता है। इक्के दुक्के आदमी को वे छोड़ते थोड़े ही है। व्यापारी लोग इसी कारण मिल कर चलते है और अपने पास हथियार रखते है।

ग्यानिमा मण्डी मे पक्के मकान बनाने की आज्ञा नही है। कच्ची ईंटे पानी के किनारे से काट काट कर उनकी दीवारे खड़ी करते है। उन दीवारो के ऊपर कपड़े, टाट, दरी आदि लगाकर मजबूत ओलतीनुमा छत्त सी बना लेते है। यहां बडी तेज़ हवा चलती है, उससे बचने के लिये अपनी गठरिओ की दीवारे अन्दर से बना सब तरह के छेदो की पूर्ति करते है। जो व्यापारी लासा से आते है, उनके तम्बू बड़े शानदार और दृढ़ होते है। आजकल जौलाई के आखीर मे दोपहर को यहां तम्बू के अन्दर बैठे हुए गरमी मालूम होती थी। सूर्य की किरणे बड़ी तेज़ जलाने वाली होती है। रात को ऐसी सरदी कि बाहर कोहरा जम जाता है और भूमि सफेद हो जाती है। जरा सा पर्वतो पर बर्फ गिरी और बड़ी ठण्डी हवा चली। ऋतु का कुछ ठिकाना नही। सबेरे जब मै बाहर नित्य कर्म के लिये जाया करता था तो पानी मे हाथ डालने से हाथ सुन्न हो जाता था।

जहां मण्डी लगती है, वहां पास ही पहाड़ी के ऊपर किसी प्राचीन किले के खडहर है। कहते है यहां किसी राजा का स्वतन्त्र राज्य था और ग्यानिमा का मैदान जल से भरा था। उस झील के होने से दुर्ग बड़ा सुरक्षित समझा जाता था।

इसी मैदान मे एक ऊंचा टीला है, जिसके इर्द गिर्द मण्डी भरती है। इस टीले पर बहुत से पत्थर एक कुंड म इकट्ठे किये हुये है, जिन पर 'ओम माने पदमे हुं' का मन्त्र खुदा है। ये अक्षर देखने मे बंगला लिपि जैसे मालूम होते थे। ग्यानिमा का लामा प्रतिदिन उस टीले पर चढ़कर पवित्र कुंड की पूजा किया करता था। हुणिये रग बिरंगी झडियां यहां चढ़ाते है और मिन्नत मांगने आते है। इसी कुंड मे पशुओं के सींग भी पड़े थे, जो किसी श्रद्धालु ने चढ़ाये होगे।

व्यापारी लोग यहां अपने डेरो मे दुकानें लगाते है। कलकत्ता, बम्बई और कानपुर से विलायती और देशी कपड़ा खरीद कर ले जाते है। सूखे फल, चीनी, लालटैनें, मूंगे, मोती, मालायें, घोडों की जीने, खिलौने आदि सामान ले जाते है। तिब्बती लोगों के सिक्के का नाम टंका है, इसका मूल्य छः आने के बराबर होता है, कभी बढ़ घट भी जाता है। भोटिए लोग इन्हीं टको को दाम मे ले लेते है और जब तिब्बत से चलने लगते हैं तो यही टके हुणिओ को देकर उनसे उनका माल—घोड़े, पशमीने, चुटके—आदि खरीद लेते हैं। तिब्बत का व्यापार अधिकांश अदले बदले का है। टंके भारत मे तो चल नहीं सकते, पर अगरेजी सिक्के—रुपया, दोअन्नी, चौअन्नी और अठन्नी—तिब्बत मे खूब चलते हैं। इस कारण भोटिओं को सिक्कों मे प्रायः कसर खानी पड़ती है, तो भी वे किसी न किसी प्रकार उस कसर को निकाल ही लेते हैं।

अपने व्यापार को सुरक्षित रखने तथा अपना उधार वसूल करने के लिए भोटिए व्यापारियों को तिब्बती हाकिमो को प्रसन्न रखना पड़ता है। उनको कोई न कोई भेंट प्रत्येक

वर्ष-देनी पडती है, उनकी हर-प्रकार खुशामद करते है। जो व्यापारी मिलनसार है, आदमी पहचानकर उधार देता है और हाकिमो को मुट्ठी में रखता है, वह अच्छा लाभ उठाता है। दुकानो पर दिन भर ताता लगा रहता है। हुणिए माल देखते फिरते हैं। जो सिर मुडे हो वे लामा है; यही लामाओ की पहिचान है, कम से कम मुझे तो यहा यही देखने मे आया। लासा के व्यापारी गोरे और खूबसूरत होते है, वे पश्चिमी हुणिओ की तरह भद्दे और काले नही होते।

प्राय: रोज मै उस टीले पर चढ़कर मान्धाता पर्वत की बर्फानी चोटिओ को देखा करता था; सध्या को मैदान मे घूमने जाता था। जहां जहां तिब्बती व्यापारिओ के तम्बू थे, वहां कुत्ते, रुद्ररूप धारण किए, अपने मालिको के असबाब की रक्षा करते थे। जहां किसी को उन्होने देखा, झट उसे पर लपक। यदि मनुष्य सावधान न हो तो टाग चीर डालना तो उनके लिए साधारण बात है। मैं इनसे बड़ा होशियार रहता था। ये कुत्ते पशुओ की रक्षा करते है, और उन्हे भेडिओ से बचाते है।

इस साल मण्डी अभी भरी न थी। बहुत थोड़े व्यापारी आए थे, धीरे धीरे उनके आने की आशा लोग कर रहे थे। मेरा चित्त यहां नही लगा, ग्यानिमा की गन्दगी के मारे मै परेशान रहता था, जिधर जाओ उधर ही दुर्गन्ध ! डेरो के आस पास कूड़े के ढेर थे। मैने शीघ्र चलने का निश्चय किया, विजयसिंह जी से सलाह कर चलने की ठानी। खाने की सामग्री इकट्ठी की। सब पॉगटी भोटियो ने इस कार्य मे हाथ बटाया। उनका मै बड़ा कृतज्ञ हू। बेचारो ने जरूरत से अधिक

सामान इकट्ठा कर दिया और उसको कैलाश जी पहुंचाने का ठेका भी ले लिया। सलाह यह ठहरी कि खाने का सामान सीधा ग्यानिमा से कैलाश जी भेजा जाए और मै अपने दो चार साथियो के साथ पांच दिन के खाने के लायक सत्तू लेकर तीर्थपुरी चल दूं और वहां से आगे कैलाश जी चला जाऊ; कैलाश जी पहुंच कर सब सामान मिल ही जायगा। पाठक शायद शंका करे कि सारा सामान साथ ही क्यो न ले गये ? बात यह थी कि तीर्थपुरी की ओर दो स्थानो पर डाकुओ का बड़ा भय रहता है, कोई झब्बू वाला हमारे साथ जाने को उद्यत नही होता था, इसलिये लाचार होकर ऐसा ही करना पड़ा। जाने का निश्चय हो गया, सब ठीक ठाक कर लिया।

ग्यानिमा तक तो मैने विजयसिंहजी के कम्बलो से गुज़ारा किया था, अब आगे चलने के लिये वे अपने कम्बल दे नही सकते थे। केवल एक मोटा काला कम्बल उनसे मंगनी ले लिया और थोड़ा खाने का सामान बांध बूंध दूसरे दिन चलने की ठानी।

अठारहवां पड़ाव

तीर्थपुरी चलते हैं

२५ जौलाई रविवार—सबेरे ही अपने प्रेमी भोटियो से बिदा हो कर हम लोगो ने तीर्थपुरी की ओर मुंह किया। मील भर दो चार सज्जन पहुंचाने आए। दो रुपये तनख्वाह पर एक पथप्रदर्शक को तीर्थपुरी तक साथ लिया।

आठ बज चुके थे। सामने मैदान ही मैदान दिखाई देता था। इधर की हवा ऐसी साफ है कि दूर की चीज स्पष्ट दीख पडती है और देखने वाले को उसके निकट होने का भ्रम हो जाता है। जब चलते चलते अधिक समय लग जाता है और निर्दिष्ट वस्तु फिर भी सामने ही दिखाई देती है, तब अपनी भूल का ज्ञान होता है।

दो तीन मील चलकर एक झील के किनारे पहुंचे। यह झील ऊची भूमि पर है। मालूम होता है इसी का जल ग्यानिमा मडी के इर्द गिर्द फूटकर निकलता है या कोई और कारण होगा। यहां कुछ देर सुस्ता लिया। फिर मैदान मैदान चलकर एक नाला पारकर घास वाले मैदान मे पहुचे। यहां बहुत सी चँवर गाये, भेड़ें चर रही थी। इनके स्वामी हुणियो का डेरा भी पास ही था। पहले विचार किया यहां ठहर जांय, क्योकि आगे डाकुओं का भय था, किन्तु बाद मे ईश्वर पर भरोसा कर चल पड़े। इस चौरस मैदान को पार कर एक खुश्क पहाड़ी के नीचे पहुंचे। इधर उधर पानी तलाश किया, कही नही मिला। प्यासे ही पहाड़ी पर चढ़ गये।

इस पहाड़ी को पार कर जब दूसरी ओर पहुचे तो सामने घाटी दिखाई दी। छोटी छोटी खुश्क पहाडियो के बीच यह रेतीली घाटी है। डाकुओ के लूट मार करने योग्य इससे अच्छा स्थान कहां मिलेगा। दृढ़ विश्वास का अमृत पानकर घाटी मे घुसे। इसको पार करते करते सूर्य ढल गया। थके हारे प्यासे, एक सोते के पास पहुंचे। यहां थोड़ा थोडा पानी निकल रहा था। इसी के पास सूखे पहाड़ी नाले मे ठहर गये। इधर उधर से उपले इकट्ठे कर लिये। जो पथ प्रदर्शक था वह बेचारा लकड़ी

ले आया । रात को सत्तू खाए और सारी रात आग तापकर काटी; मैंने घटा भर भी नीद नहीं ली ।

२६ जौलाई सोमवार—पांच बजे सबेरे चल पड़े। ऊंची ऊंची पहाड़ियो पर चढ़ना पड़ा । बड़ी कठिनाई से पहाड़ो के ऊपर पहुंचे । यहां बहुत से झब्बू लदे हुये आरहे थे। दो तीन जोहारी व्यापारी साथ थे, इनकी इच्छा ग्यानिमा जाने की थी ।

इस पहाड़ी के शिखर से उतार आरम्भ हुआ। एक तग घाटी मे पहुंचे । यह भी किसी पहाड़ी नाले का रास्ता है। वर्षा ऋतु मे इसमे कहीं से जल आता होगा, आज कल तो मानो अपने भाग्य को रो रहा था। इस घाटी का रूप बड़ा भयानक है। तग खुश्क घाटी, इर्द गिर्द दोनो ओर ऊंची पहाडियां मानो काट खाने को दौड़ती हैं । कोई पशु पत्ती यहां दिखाई नहीं दिया। दो घटे मे इसे पार कर एक तिमुहानी पर पहुंचे। सामने पानी की ग़ज भर चौड़ी धार बह रही थी। यही बैठ गये और हाथ मुंह धोकर सत्तू फांकने लगे। घण्टे भर मे निश्चिन्त होकर फिर बढ़े। अब चढ़ाई चढ़ना था। १६००० फीट घाटे पर ऊंचे चढ़ गये । यहां से पूर्व की ओर पहाड़ पहाड़ जाना था; सामने सतलुज चमक रहा था । देखने मे मानो यह पास ही था, पर चलते २ प्यास का कष्ट सहते हुये, पांच बजे सन्ध्या के करीब नदी के किनारे पहुंचे। सतलुज घाटी मे बैठे है; सामने सतलुज नदी के पार तीर्थपुरी दिखाई देती थी; श्वेत श्वेत टीले धूप मे चमक रहे थे । कुछ सुस्ताकर सतलुज का ठण्डा जल पिया । प्यास मिटाने के बाद नदी पार करने की तय्यारी की। नदी तेज बह रही थी, अतएव बड़ी सावधानी से लकड़ी के सहारे सतलुज की तीनो धाराओ को पार किया । तीर्थपुरी पहुंच गए ।

आज की यात्रा में जल बिना बडा कष्ट हुआ। सारे रास्ते में केवल दो जगह जल मिला।

उन्नीसवां पड़ाव

तीर्थपुरी

सतलुज नदी के ठीक किनारे तीर्थपुरी का प्रसिद्ध स्थान है। यहा रहने के लिये पहाड़ी टीलों में गुफाये खुदी हैं; कमरे से बने हुए हैं। एक ऐसी ही गुफा में रात बितानी पड़ी। तीर्थपुरी के लामा लोगो ने अपने रहने के लिए इसी प्रकार की गुफाये बनाई हुई हैं। जो यात्री तीर्थपुरी में बुद्ध भगवान् के मन्दिर के दर्शन करने आते हैं, उन्ही को ये सब ठगते हैं। हमारे पीछे भी लग गए थे बार बार सत्तू मांगते थे। रात किसी प्रकार कट गई।

२७ जौलाई मंगलवार—प्रातःकाल मैं गरम जल के चश्मे देखने गया। एक सफेद पहाड़ी पर कई जगह पानी उबल उबल निकल रहा था। दो एक स्थान पर जल ऐसा उष्ण था कि उसमें हाथ नहीं डाल सकते थे। इन गन्धक के चश्मो में से जो जल उबल उबल कर निकलता है, वह पृथ्वी के नीचे नीचे राक्षसताल से आता है। यात्री लोग इस स्थान को "भस्मासुर की ढेरी" कहते हैं। दन्त कथा है कि किसी भस्मासुर नामी राक्षस ने श्री शिव जी महाराज को प्रसन्न करने के लिए उग्र तपस्या की थी। भोले देवता उसके प्रेमपास में बंध गए और उससे वर मांगने के लिए कहा। भस्मासुर बोला—"भगवन! मुझे ऐसी शक्ति दीजिये कि जिसके सिर पर मैं हाथ रक्खूं वह उसी क्षण भस्म होजाए।" महादेव जी ने

कहा "एवमस्तु"। जब भस्मासुर के हाथ मे भस्म करने की शक्ति आगई तो उसने दुष्टता वश उसका प्रयोग शिवजी पर ही करना चाहा। महादेव जी भागकर पृथ्वी के नीचे छिप गए। भस्मासुर ने देवी पार्वती जी को घेरा और उनसे अपना प्रेम प्रकट किया। पार्वती जी ने कहा—

"बहुत अच्छा। तुम पहले शिवजी का ताण्डव नृत्य कर के दिखलाओ, बिना उस नृत्य को जाने कोई भी भगवान् की वस्तु ग्रहण नही कर सकता।"

भस्मासुर उन्मत्त हो नाचने लगा और उसने ताण्डव नृत्य करते करते अपने हाथो से अपने ही सिर को भूल से छू दिया, बस उसकी दुष्टता का वही अन्त हुआ। इसी कारण इस स्थान को भस्मासुर की ढेरी कहते हैं और यात्री लोग यहां की सफेद मिट्टी अपने साथ ले जाते है और उसको पवित्र मान अपने शरीर पर लगाते है।

शतद्रु नदी के किनारे, तीन घाटिओ के सङ्गम पर, तीर्थपुरी का मन्दिर विराजमान है, इर्द गिर्द सुन्दर सुहावना घास, लहलहाते हरे मैदान, मीलो लम्बे चले गए हैं। पहाड़ी पर खड़े होकर दृष्टि डालने से प्रकृति का विचित्र चित्र दिखाई देता है। चारो ओर हरी हरी दूब पशुओ के चित्त को प्रसन्न करने वाली है। पहाड़ियां खुश्क है, पर मैदानो मे घास बराबर चली गई है और मैदान भी बड़े बड़े लम्बे हैं। इन मैदानो के बीच बीच कैलाश पर्वतमाला से निकलने वाले पहाड़ी नाले गड़ गड़ करते हुए जा रहे है और सतलुज की शक्ति बढ़ाते है। ऐसे स्वच्छ स्थान पर तीर्थपुरी के चश्मे है, किन्तु तिब्बत-वासी उस प्राकृतिक सौन्दर्य का कुछ लाभ नहीं

उठाते। मरे हुए पशु, कुत्ते आदि सतलुज में ही फेंक देते हैं, नदी के पास ही मल मूत्र त्याग करते हैं, हालांकि इर्द गिर्द बहुत भूमि दिशा फिरागत जाने को है, लेकिन इनको सफाई का तनिक भी ध्यान नहीं।

आज सवेरे तीन घंटे गरम जल में कपड़े धोते रहे। कई दिनों का दरिद्र दूर किया। दोपहर को मन्दिर देखने गए। अंधेरी गुफा में मन्दिर है। मैं तो अच्छी तरह देख भी नहीं सका। घी के छोटे छोटे चिराग बुद्ध भगवान् की मूर्ति के आगे जल रहे थे। इन मन्दिरों में घी बहुत चढ़ाया जाता है। कई लामाओं के चित्र यहां टंगे थे।

रात को इधर का जंगली साग बनाकर खाया। चश्मे के पास ही खुले में सोए। आग सारी रात जलती रही।

बीसवां पड़ाव

कैलाश मार्ग

२८ जौलाई से ३० जौलाई तक—सवेरे बड़ी कठिनाई से कुली का प्रबन्ध कर सके। हमारा पथ प्रदर्शक तो ग्यानिमा लौट गया, उसकी ड्यूटी तीर्थपुरी तक की थी। तीर्थपुरी में एक लामा आया हुआ था, वह हिन्दी भाषा कुछ कुछ बोल सकता था, उसी की सहायता से दो कुली मिले। ये दो कुली तीर्थपुरी के छोटे लामा थे, जो श्री कैलाश प्रदक्षिणा के लिए जा रहे थे। इन दोनों को असबाब उठाने तथा मार्ग दिखलाने के दो रुपये छः आने दिये।

तीर्थपुरी से कैलाश जी तीन दिन का मार्ग है। इन तीन

दिनों की यात्रा मे हमे रास्ते मे घास के मैदान, पहाड़ी नदियां और भेड़ चराने वाले हुणिए मिले। कई नदियां पार करनी पडती हैं; बड़ी सावधानी चाहिये। जरा कहीं पैर फिसल गया तो नदी अपने साथ ही ले जाती है। मैदानो में घास बहुत है; हजारो भेड बकरी आनन्द मे चर सकते है। हवा बड़ी तेज और ठण्डी चलती है। यात्री को हवा से बचने के लिये गरम कन्टोप का अवश्य प्रबन्ध करना चाहिये। रात को हम लोग खुले मे जल के पास डेरा करते थे। अपने सोने लायक भूमि साफ कर पत्थरो की दो फीट ऊची दीवारे खड़ीकर, फिर पास ही आग जला बिस्तरे बिछाकर सो रहते थे। क्या करते, किसी प्रकार समय काटना था। तिब्बती लोग ऐसे पत्थरो के घेरो को डोगे कहते है। सारे तिब्बत मे इसी प्रकार के डोगे पांच पांच चार चार मील पर बने रहते हैं। यात्री लोग इन्ही से मार्ग की पहचान करते है। इस देश मे न सड़कें हैं और न पुल ही हैं, सब सफर 'अभ्यास' पर निर्भर हैं। जो नित्य के घुमक्कड़ है, वे ही पथ प्रदर्शक का काम दे सकते हैं। तिब्बती पथ-प्रदर्शको का मुख्य भोजन चाय है। चाय बनाकर सत्तू के साथ खाते हैं, जैसे गरम देश मे जल पिया जाता है, ऐसेही इधर चाय का व्यवहार होता है। जहां जाकर पहुंचे, लकड़ी उपले इकट्ठे किये, दियासलाई हो तो अच्छा, नहीं तो चकमक पत्थर की रगड़ से आग पैदा कर धुकनी से झट आग सुलगा लेते है। इधर की हरी लकड़ी भी खूब जलती है। छोटे छोटे झाड़, आधे भूमि के अन्दर, आधे बाहर होते हैं। इनको उखाड़ कर तत्काल जला लिया जाता है। ईश्वर की माया है।

तीस जौलाई को सबेरे हम श्रीकैलाश के नीचे सिन्धु नदी के किनारे पहुंच गये। यहीं से कैलाश जी को मार्ग जाता है।

सिन्धु नदी कैलाश पर्वतमाला से निकल कर आती है। इसी के किनारे किनारे कैलाश जी की ओर हमको जाना था। सामने पर्वतो के बीच मार्ग फटा हुआ है, सिन्धु नदी ने इस मार्ग को पर्वत फोड कर बनाया है। इसी मे हम सब घुसे। यही से कैलाश-परिक्रमा का आरम्भ होता है।

विजयसिंह जी ने मेरे खाने पीने का सामान लैन्डी गुनवा (मुख मन्दिर) मे भेजा था, इसलिये आज इसी मन्दिर मे ठहर गये। परिक्रमा के पाच छ. मील चलने पर यह मन्दिर मिलता है। यह भी गुफा खोद कर बनाया गया है। नदी की घाटी मे पांच सौ फीट ऊचे टीले पर अच्छा वड़ा मन्दिर है। उसके अन्दर एक कोने मे, जहाँ जानवरो की हड्डियां पड़ी हुई थी, हम लोगो को ठहरने का स्थान मिला। उसी को साफ करके वही रोटी बनाई और पेट-पूजा की। ग्यानिमा छोड़ने के बाद आज रोटी और वडिओ का शाक खाने को मिला। भोजन के बाद मन्दिर देखने गये। यहां अच्छा बडा पुस्तकालय है। तिब्बती भाषा के बहुत से ग्रन्थ देखने मे आए। उनको कपडो मे लपेट कर सावधानी से रखते है। लामा लोग हर समय 'ओम माने पद मेहुं' का जाप करते रहते है। स्त्रियाँ भी सन्यासियो की तरह इन मठो मे रहती है और अपने समय को बुद्ध भगवान् की सेवा मे खर्च करती हैं।

कैलाश जी की प्रदक्षिणा करने का घेरा २५ मील का है और तीन दिन लगते है, कई यात्री दो दिन मे ही मार्ग तैकर लेते है, तिब्बती लामा तो रात दिन चलकर इसे पूरा कर सकते है, जैसी जिसे सहूलियत होती है वैसा ही वह करता है। जो अमीर यात्री है, जिनके साथ नौकर तथा खेमे है, वे आनन्द

से पांच चार दिन मे अपने सुभीते अनुसार यात्रा का मजा लूटते है। जिनके पास नौकर नहीं हैं वे जहां तक जल्दी हो सकती है, करते हैं, क्योकि सामान पीठ पर लाद कर इन पहाड़ो की यात्रा नही हो सकती। जिनको अभ्यास है वे कर भी सकते हैं। मैं तो अपनी कहता हूं। मेरे लिये तो पांच सेर बोझ लेकर चलना भी कठिन था। इसी कारण यहां मुखमन्दिर से दूसरा कुली दरचन तक तलाश किया। अब मेरे पास बोझा अधिक होगया था। विजयसिंह जी ने जो सामान भेजा था वह और मेरे कपड़े लत्ते, इन सब की एक गठरी बना कर, मुखमन्दिर के लामा के सुपुर्द कर दी। गठरी को अच्छी तरह सीकर, उसपर लाख की मुहरे लगा दीं, ताकि लामा के गुरुभाई रात को सामान निकाल कर हजम न कर जायँ। दरचन चौथा मन्दिर और कैलाश का आखिरी पड़ाव है। परिक्रमा करने वाले दरचन से शुरू करके दरचन ही लौट आते है; यही पूरी पचीस मील की परिक्रमा है।

इक्कीसवां पड़ाव

कैलाश प्रदक्षिणा

२१ जौलाई शनिवार—सबेरे पांच मील तक सिन्धु के किनारे किनारे चले गये। रास्ते मे कई जगह बनैले कबूतरो को कलोले करते देखा; बड़ा आश्चर्य हुआ। इन बर्फानी पर्वतो मे यह भोला भाला पक्षी कहां से आगया। रास्ते मे दोनो ओर जलप्रपात देखे। कैलाशजी की चोटी मेरे दाहिने हाथ थी और बाये हाथ दूसरी पहाड़ियां, दोनो ओर से हिम

ढल ढल कर आरही थी। आगे बढ़े। सामने कैलाश जी के भव्य दर्शन हुए।

क्या ही अलौकिक दृश्य था। यह अनुपम छटा! श्री कैलाशजी का पर्वत सचमुच ईश्वरीय विभूति का अनोखा चमत्कार है। मैने मन्दिर शिवालय बहुत से देखे हैं, पर ऐसा प्राकृतिक शिवालय इस भूमण्डल पर कही नही है। जिस कुशल शिल्पी ने प्रथम शिवालय की रचनाविधि का नकशा तय्यार किया होगा, उसके हृदय पट पर तिब्बत स्थित इस नैसर्गिक शिवालय की प्रतिकृति अवश्य रही होगी; इसके बिना वह कदापि शिवालय बना नही सकता था। प्रकृति ने हिम द्वारा वही काट, वही छांट, वही घेरा, वही चिनाई और वही सजावट इस कैलाश पर्वत के निर्माण मे खर्च की है। भारत मे नकली शिवालय देखा करते थे, आज यहां शिवजी का असली स्थान देख लिया। २१८५० फीट ऊचे इस कैलाशजी की महिमा का वर्णन क्या कोई कर सकता है? किस गौरव के साथ उन्नत मुख किये, यह चारो ओर देख रहा है। इसकी दृष्टि अपने प्यारे भारत पर पड़ रही है, जहां उसकी प्रतिकृति बनाकर करोड़ो आत्माये "हर हर महादेव!" की ध्वनि कर अपने को धन्य मानती है। दूर—चीन, जापान, स्याम, ब्रह्मा, लका—आदि देशो से बौद्ध धर्मावलम्बी इसकी परिक्रमा करने आते है। श्री कैलाश जी का यह विश्वकर्मा रचित मन्दिर उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा है, जब स्वाधीन भारत के बच्चे, चीन और जापान के बच्चो के साथ प्रेमालिङ्गन करते हुये, इसकी परिक्रमा करेंगे।

जिस कैलाश जी की महिमा पुराणो ने गाई है, जिसकी प्रशसा मे तिब्बती ग्रन्थ भरे पडे है, उस श्री कैलाश के

दर्शन कर आज मैंने अपने आपको धन्य माना। यद्यपि इस पवित्र दर्शन के लिए बड़े बड़े कष्ट सहने पड़े, गन्दे तिब्बतियो के साथ रहना पड़ा, लामाओ की घुड़कियां सुनीं, तो भी क्या, इस आनन्द के सम्मुख वे सब दुःख हवा हो जाते है! सिन्धु नदी के किनारे किनारे जा रहे थे, पर आंखे कैलाश जी पर थी। दूसरा मन्दिर आगया। इसको डरफू कहते है। यहां सिन्धु पार-कर गौरीकुण्ड की ओर चले। कैलाश जो यहां बिलकुल सामने, बिल्कुल पास है।' चढ़ाई बड़ी कठिन है। धीरे धीरे चढ़ा। रास्ते मे वर्षा होने लगी, फिर साफ हो गया। ऊंचे, ऊंचे चढते है। कैलाश जी के ठीक पीछे, उत्तर की ओर गौरीकुण्ड है। यह बारह महीने जमा रहता है। चार बजे के करीब यहां पहुंचे। कुण्ड क्या है, खासा बड़ा तालाब है। आजकल जौलाई मे इस पर बर्फ जमी थी। गौरीकुण्ड के किनारे बैठकर सत्तू खाये और बर्फानी जल पिया।

चलने की शीघ्रता की, क्योकि बर्फ गिरने का भय था। श्री कैलाश जी को तीन बार नमस्कार किया, फिर 'बन्देमातरम्' का जाप कर 'हर हर महादेव,!' की ध्वनि से श्री कैलाश जी को प्रसन्न कर चल पड़े।

यहां से नीचे बेढ़ब उतार है। जैसी बेढ़ब चढ़ाई से ऊपर आए थे, वैसे ही नीचे साढ़े तीन मील जाना था। एक प्रेमी की सहायता मे साढ़े तीन मील बेढब उतार को पूरा किया।

नीचे पहुंचे ही थे कि वादल फिर घिर आया। मूसलाधार वर्षा घंटे भर तक होती रही। एक बड़े ढोके की आड़ मे देर तक बैठे रहे। चारो ओर जलही जल दिखाई देने लगा।

जब वर्षा थम गई तो नदी के किनारे तीसरे मन्दिर की तरफ चले। पाठक अब हम लौटते हैं, सुनिए, उस घाटे के पास से जहाँ पर्वत माला फोडकर सिन्धु नदी मैदान मे आई है, हम लोगो ने परिक्रमा आरम्भ की थी। धीरे धीरे नदी के किनारे ऊपर चढ़ते हुए डरफू पहुचे थे; वहाँ कैलाश जी की पूर्णकला के दर्शन कर दहिने हाथ गौरी कुण्ड की ओर घूमे, इस घुमाव से गौरी कुण्ड तक विकट, टेढी मेढ़ी चढ़ाई पूरीकर, कुड का अमृत रूपी जल पान किया। वहां से उतरे। डरफू से लेकर इस उतार के पूरा होने तक जो मार्ग है, उसको आप श्री कैलाश जी की पीठ का रास्ता समझिये। डरफू के पास हमने सिन्धु नदी को छोड दिया था। उतार खतम होने पर कैलाश पर्वतमाला से निकलने वाली दूसरी धारा को पकड़ लिया। अब इसके किनारे किनारे चलकर पीछे लौट पडे।

सध्या हो गई। पानी मे छलछलाते करते हुये जा रहे थे। जूता टूट गया, उसको फेंक देना पड़ा। बाई ओर भयानक पर्वत-माला, दाहिनी ओर कैलाशजी, सामने विकट मार्ग चले जा रहे है; साथी सब आगे चले गये, केवल दो जने मेरे साथ थे। एक साथी की गलती के कारण रास्ता भूल गये। बिलकुल अधकार छा गया। अधेरा मुझे दिखाई नही देता, टटोल टटोल कर पहाड़ी दुर्गम पथ पर जा रहा हू। बाये हाथ नदी भीषण नाद करती हुई जा रही है, दाहिने हाथ कैलाश जी की पर्वतमाला चली गई है। रास्ता नही सूझता। इस घटाटोप अधकार मे दाहिने हाथ के पत्थरो के पास बैठ जाते है। जिस साथी की भूल का यह परिणाम था वह बेचारा पछताता है, पर "अब पछ-ताये क्या होत है, जब चिड़िया चुग गई खेत"—आज इसी विकट घाटी मे, बर्फानी पर्वतो के बीच, खुले मे रात काटनी

पड़ी, परन्तु एक सहारा उस सर्वशक्तिमान् का था, जिसने सदा अपने प्रेमिओं की मुसीबत मे रक्षा की है।

भीगे हुये पत्थरों पर बैठे है; काला कम्बल ओढ़ा हुआ है, छाता लगा रखा है; आकाश मेघों से आच्छन्न है। सामने से नदी की गर्जना की आवाज आरही है; इर्द गिर्द काला अन्धकार, सामने ऊंचे पर्वत पर बर्फ पड़ी है। बैठा हूं; चुपचाप बैठा हूं; अकड़ा हुआ बैठा हूं; जरा इधर उधर नही डोलता ताकि कपड़े मिट्टी से लतपत न होजाये, ऊपर से वर्षा होरही है। ऊंघता हूं। यह क्या ? पीछे से पानी आ रहा है। दोनों पैरां को अच्छी तरह ऊपर पत्थरो पर रखता हूं, कपड़े सम्भालता हूं ताकि पानी नीचे नीचे से चला जाए। वर्षा बन्द हो गई, प्रभु का नाम लेता हूं; कुछ ध्यान करता हूं। धीरे धीरे रात बीतती है—एक, दो, तीन, चार, पांच—वह सामने सूर्य भगवान् का देदीप्यमान रथ आ रहा है। अन्धेरा भागता है, वह प्रकाश के सामने कैसे ठहरेगा। दिन हो गया। आह ! ३१ जौलाई १९१५ शनिवार की रात इस प्रकार कटी। आयु भर यह रात भी याद रहेगी।

बाईसवां पड़ाव

श्री कैलाश जी के चरणों में

१ अगस्त रविवार—सबेरे छुडुलपु मन्दिर में पहुंच गये*। यहां मन्दिर के आगे बहुत सी झन्डियां लटकाई हुई थीं। मन्दिर वैसा ही गुफा की तरह है; दरवाजे और छते भी होती है।

---

* यहां से कुछ साथी कहीं चल दिये—लेखक

ये लोग दुमजिले तिमजिले मकान बनाते हैं। यहां दो रुपए देकर मैंने टाट का जूता खरीदा। जूता क्या था, खाली मोटे टाट का तला ही तला था। उसी में रस्सी डाल पैर के इर्द गिर्द जकड़ लेते हैं, उसी भद्दे तले को पहिर कर आगे बढ़ा। नदी के किनारे किनारे चलकर चार घंटे में घाटी से बाहर निकले; मैदान में पहुचे, सामने है दरचन। पूरी परिक्रमा हो गई।

दरचन कैलाशजी की उपत्यका में छोटा सा ग्राम है। यह भी नदी के किनारे बसा है। यहां एक दुकानदार के आंगन में ठहरने का प्रबन्ध किया। जब बोरा खोल कर अपना रसद का सामान ठीक करने लगे तो दरचन मन्दिर के मैनेजर को पता लगा। वह हमें अपने साथ ले गया। हमने उसके यहां ठहरने का प्रबन्ध कर लिया। तिब्बती लोग हमारे असबाब—आटा, दाल, चावल—आदि को किसी धोके से ठगना चाहते थे, सभी की लालसा थी कि इनसे कुछ न कुछ ठग ले। जिस प्रकार हमारे तीर्थों पर पण्डे गिद्धों की तरह यात्रियो पर झपटते हैं, ऐसे ही यहां भी देखने मे आया।

दारिमा के तीन व्यापारियो की सहायता से मैंने झब्बू किराए पर किया। यहां का एक हुणिया दुकानदार तकलाकोट जा रहा था, उसी का झब्बू छः रुपए पर किराए कर लिया।

यहां से मानसरोवर और मानसरोवर से तकलाकोट जाना था, वहा से भारतीय सीमा अति निकट है। उस हुणिए की सलाह तीन अगस्त को चलने की थी, इसलिए मुझे दो दिन यहा ठहरना पडा।

दरचन मन्दिर मे तिब्बती क्रूरता की भयकर व्यवस्था मालूम हुई। लामाओ ने एक बकरे को पकड़ कर उसका मुह

और नाक कसकर बांध दिया; दम घुटने से पशु छटपटाने लगा; बेचारे ने तड़फ तड़फ कर प्राण दिए। अपनी इस क्रूरता का कारण इन्होंने यह बतलाया कि बौद्ध धर्म के अनुसार लामाओ को जीवहिंसा का निषेध है, इसलिए उस नियम की रक्षाहित पशु को शस्त्र से नही मारते, केवल दम बन्द कर देते है, पशु आप ही मर जाता है ! यह फिलासफी इन लामाओ की है। आज रात को कढी और चावल बनाकर खाया। थके हारे सोगए। रात भर वर्षा होती रही।

२ अगस्त सोमवार—जिस दुभिए के साथ हमे जाना था, उसका नाम मै 'बूभी' रखता हू, क्योंकि वह बाते करते करते "बूभी ! बूभी !!" कहकर चिल्लाता था। 'बूभी' आज कैलाश की परिक्रमा करने गया था। हमे भी यही ठहरना पड़ा। दरचन मे पक्के मकान बने है। जिस मन्दिर मे हम ठहरे थे, वह दो मजिला और पक्का बना हुआ था। आज नमकीन रोटी बनाकर मक्खन के साथ खाई। तीन रोटी बूढ़े लामा को दे दी, इस पर मैनेजर हम पर बडा बिगड़ा और हमारा असबाब उठाकर बाहर फेकने लगा। किसी प्रकार उसको मनाया, मिन्नत खुशामद की, उसे भी रोटियां दीं, तब वह धूर्त कहीं शान्त हुआ। जिस दारिमा वाले व्यापारी ने भब्बू किराये पर करा देने मे सहायता की थी, वह भी 'बखशीश' मांगने आया। किसी प्रकार उसको भी रफादफा किया। आज दिन भर वर्षा होती रही। रात को उसी मन्दिर मे सोए। यह मन्दिर कैलाश जी के चरणो मे बना हुआ है। श्री कैलाश जी की प्रदक्षिणा का यह चौथा और अन्तिम मन्दिर है। यहीं प्रदक्षिणा खतम हो जाती है।

तेईसवां पड़ाव

मानसरोवर प्रस्थान

३ अगस्त मगलवार—साढे आठ वजे के वाद 'बूझी' ने चलने की तय्यारी की। चल पड़े। सामने मैदान मे नदियो की भरमार है। दो दिन जो वर्षा होगई थी, उसके कारण पर्वतो से जल उमड़ आया था। बरसात मे तो दरचन से राक्षस ताल तक एक खासी बड़ी झील बन जाती होगी। यदि पिछली रात वर्षा बन्द न रहती, तो आज हम किसी प्रकार मानसरोवर नही जा सकते थे। नदियो को लांघते, धाराओ को पार करते हुये निकल गये। सूखे ऊचे मैदान मे पहुंचे, यहां दारिमा वाले व्यापारिओं के कुछ पाल खडे थे। उनसे मिले। एक व्यापारी के १२०० रुपये चोरी होगये थे; वह गरीब बड़ी दीनता से चोर के पता लगाने मे मेरी मदद मांगने लगा। उसने समझा कि शायद यह साधु ज्योतिप विद्या द्वारा उस चोर का पता लगा सके। मैंने उसे बहुतेरा समझाया कि मुझ मे यह योग्यता नही, लेकिन उसे विश्वास नही हुआ। उस दुखी पर मुझे बडी दया आई, लेकिन मै कर क्या सकता था।

सामने राक्षसताल सूर्य के प्रकाश मे चमक रहा था। उसी की ओर बढ़े। रास्ते मे पानी की दिक्कत रही। 'बूझी' राक्षसताल के पास नही जाना चाहता था, क्योकि उसके बिलकुल निकट जाने से पांच चार मील का फेर पड जाता और मानसरोवर पहुंचने मे रात हो जाती, इसलिये राक्षस ताल से डेढ़ मील फासले पर जो पगडण्डी मानसरोवर जाती है, उसी को धर कर चले। आज भी डाकुओ का बडा भय

था और रास्ता उजाड़ बियाबान। इधर उधर देखते हुए, बड़ी तेजी से बढ़े चले गये। मेरे पाओ को रस्सी ने काट दिया था, चलने मे कष्ट होता था, तो भी क्या, उन्हीं टाट के तलों को फिटफिटाता हुआ आगे बढ़ा। मेरे दाहिने हाथ डेढ़ मीलपर राक्षस ताल लहरें मार रहा था; उसका दृश्य देखते हुये एक घास के मैदान मे घुसे। मै सब से पीछे रह गया। यहां रास्ता पहचानना दुस्तर है; अनजान आदमी कहीं का कहीं निकल जाय। 'बूझी' तो झब्बू पर सवार था, इस कारण उसे रास्ते की कठिनाई क्या मालूम होती; उसने हम लोगो की कुछ भी परवाह नहीं की। मरता क्या नही करता, लाचार होकर उसके पशुओ के साथ साथ भागना पड़ा। अत्यन्त कष्ट सहकर मानसरोवर के निकट पहुंचे। पांच बज गये थे। एक नाला सा सामने दीख पड़ा। मैंने उसके जल से प्यास बुझाने की ठानी, किन्तु 'बूझी' ने मना कर दिया। बाद मे पता लगा कि उसका जल नमकीन और हानिकारक था।

इस नमकीन नाले के पास ऊंचे टीले पर चढ़े। यहां गरम जल के चश्में है, उन्ही के पास गुफा मे डेरा डाला। थकान के मारे मुझसे चला नही जाता था; पाओ मे छाले पड़ गये थे। वहीं गरम जल से मैंने अपने पाओ को धोया, तत्पश्चात् मानसरोवर देखने के लिए चला।

× × × × ×

मानसरोवर-दर्शन

गुफा से थोडी चढाई चढ़ने पर मानसरोवर के पुनीत दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिस मानसरोवर की महिमा बालकपन से सुना करता था, जिसके दर्शनार्थ भारत की करोड़ों आत्माये लालायित हैं जिसको देखने के लिये योरुप के धुरन्धर विद्वान दूर दूर से आते हैं, जिसकी नैसर्गिक शोभा की प्रशंसा सब विदेशियो ने मुक्त कंठ से की है, उस मानसरोवर के दर्शन कर मैंने अपने आपको करोडों बार धन्य माना।

पाठक, पूर्व की ओर मुंह कर अपने आपको एक पहाडी पर खडा कीजिये। वह पहाडी टूटी दीवार की तरह ऊंची नीची आपके दाहिने बाये चली गई है। आपके पीछे सूर्यदेव अपने दिन का कार्य पूरा कर धीरे धीरे अपनी शक्तियां को समेट रहे हैं। कृपा कर अपनी दृष्टि दौडाइये। आपके सामने सत्तर ※ मील परिधि की एक बृहत् झील है। उसके चारो ओर पर्वत-मालाएं हैं। वह देखिये दक्षिण की तरफ मान्धाता पर्वत की बर्फानी चोटियो का प्रतिबिम्ब जल में कैसा मनोहर दीख पडता है। सामने, झील के पूर्वी किनारे पर, नीले पर्वतो की कतार कैसी शोभा बढ़ा रही है। उत्तर में कैलाश जी अपने साथी संगियो के साथ विहार कर रहे हैं। सरोवर का जल नीला नीला आंखो को क्या ही सुख देता है। वह देखिए, राजहंस, श्वेत बिलकुल श्वेत, अपनी सुन्दर पतली चोचो से

※अंगरेजी लेखकों ने मानसरोवर की परिधि पैतालीस मील लिखी है,लेकिन परिक्रमा करने वाले भोटिया लोग इसको सत्तर मील से कम नहीं मानते।
—लेखक

जल में क्रीड़ा कर रहे हैं। उनका आलाप सुनिये; मस्तानी चाल देखिये; स्वच्छन्दता का विचरना निहारिये; किस निर्भयता से ये बाते कर रहे हैं। क्या इनको किसीका डर है? बिलकुल नहीं। यहां इन्हे पूरी स्वतन्त्रता है, किसी शिकारी के निशाने का भय नहीं। ये मनुष्यो की तरह बाते करते हैं, कैसी बड़ी आवाज़ है, इनके झुंड जलपर क्या मज़े मे तैर रहे है। आहा! हा!! हा!!! क्या ही अनुपम छवि है।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

अब संध्या होना चाहती है। आइए चले, कल सबेरे इस पवित्र सरोवर मे स्नान कर अपनी यात्रा सफल करेंगे।

लौटकर गुफा मे आगये। सत्तू खाकर पेट पूजा की। इस गुफा मे बिस्तरे लगा दिये; सारी रात होश नहीं रहा।

४ अगस्त बुधवार—भोर होते ही गुफा से निकले। 'बूभी' ने झब्बुओ पर असबाब लादा और चल पड़े। मानसरोवर के किनारे किनारे चार मील तक चले गए। एक स्थान पर किनारा स्नान करने योग्य था, वही ठहर गये। सामने भास्कर महाराज खिले चेहरे से हंस रहे थे। निर्मल, स्वच्छ जल की लहरे, मेरे पाओ के पास खेल रही थीं। नंगा होकर मैंने शीतल जल मे प्रवेश किया। मुझे तैरने का बड़ा अच्छा अभ्यास है, इसलिये निर्भय होकर आगे बढ़ा, किन्तु मानसरोवर की नीचे की भूमि मेरे बोझ से रबर की तरह दबने लगी, तब मैंने आगे बढ़कर तैरने का विचार छोड दिया और वहीं किनारे के पास थोड़े जल में डुबकियां लगाईं और अपने शरीर को खूब धोया। स्वच्छ जल तन को कैसा सुख देता था और इर्द गिर्द की छटा भी मन को अत्यन्त मुग्ध करती थी। बडी श्रद्धा से

के इर्द गिर्द हैं, जहां हज़ारों भेड़ बकरी मज़े में चर सकते है
दाहिने हाथ की तरफ राक्षसताल का सौन्दर्य भी कम न
यहां खड़ा हुआ मनुष्य दोनों सरोवरों की बहार मज़े
देख सकता है। श्री कैलाश जी से मानसरोवर आने मे भू
नीची होती जाती है और मानसरोवर अधित्यका १५०
फीट की ऊंचाई पर है, इसका फैलाव बहुत दूर तक है। म
सरोवर से तकलाकोट की ओर जाने में फिर ऊंचाई
होती हैं।

यहां मै और एक प्रेमी रास्ता भूल गये। 'बूझी' न ज
कहां चला गया। दोनों जने इधर उधर भटकते रहे। अ
मेरे पाओं मे दर्द था। धूप मे चलने से प्यास लग गई। राक्ष
ताल के किनारे आकर उसका जल पिया। यहां ताल के कि
हुणिओ के खेमें गड़े थे; उनसे तकलाकोट का मार्ग पूछ
उनके बतलाने पर पूर्व की ओर मुंह कर चल दिये। एक
चुका होगा। दहिने हाथ घास का मैदान है और बाएं
वर्फानी पहाड़, यही मान्धाता पर्वत है, इसी के साथ साथ
रहे है। बड़े चक्कर काटने पड़े; ऊंचे नीचे मैदानो को तै कि
पांव छलनी हो गये; नंगे पैर चलना पड़ा; रस्सिओं ने प
में घाव कर दिये थे।

चौबीसवां पड़ाव

गुरला मान्धाता पर्वत के पास

संध्या हो गई। पत्थरों से भरी हुई करनाली नदी के

बर्फानी घर में निकल कर मैदान में आई है। इसको पार कर इसके दूसरे किनारे पर रात काटनी थी। शीत बर्फानी जल में पांव डालता हूं, नदी का वेग पाओं के जख्मों में नमक का काम करता है। पांव उखड़ते है, इनको अपनी मानसिक शक्ति से पत्थरों पर जमाता हूं। एक धार पार करली, दूसरी में अधिक जल है; परब्रह्म का नाम लेकर इस में पांव रखता हूं; बर्फानी जल पाओं को काट रहा है; उनको सुन्न कर रहा है। लकड़ी को जोर से दबा कर पांव उठाता हूं। धीरे धीरे, एक कदम, दो कदम, नदी पार करता हूं। सामने घास की ओट में 'बूभी' चाय बना रहा है; वहीं रात काटनी है।

रात को करनाली के किनारे रहे। यह रात भी कभी न भूलेगी। गुरला की बर्फानी चोटियां चमक रही हैं। रात को रोटी बनाकर खाई, घुटने जोड़ कर लेट गया; सरदी के मारे नींद नही आई। कपड़े ओस से भीग गये है। शुभ्र चाँदनी छिटकने लगी है। आहा! चन्द्रदेव के दर्शन हुए; क्या ही रम्य दृश्य था। घंटों बैठा इसी को देखता रहा, नदी की गड़गड़ के सिवाय झब्बुओं के जुगाली करने की आवाज आती है, साथियों में से कोई खुर्राटे भर रहा है। चन्द्रदेव धीरे धीरे हलके पड़ रहे है, उषा की लालिमा अपना प्रभाव जमाने लगी है। कुछ प्रकाश हुआ। चलने की तैय्यारी कर ली।

५ अगस्त रविवार—आज कई नदियां पर की। करनाली की सहायक नदिओं का आनन्द देखते हुए कभी ऊचे कभी नीचे के चढ़ाव उतार पूरे करते हुये, ग्यारह बजे के बाद एक पहाड़ी नाले के किनारे पहुंचे। यहां कुछ नाश्ता किया। फिर चले। कंकड़ोवाले मैदान तै कर लिये, अब नीचे उतर रहे हैं।

दो बजे के करीब करनाली की घाटी मे पहुंचे। यहां पहली बार लहलहाते खेत देखने में आए। जौ का खेत लहरें मार रहा था। छोटी छोटी नहरें काट कर स्थान स्थान पर भूमि सींची गई है। इधर उधर चारों तरफ हरे भरे मटर के खेत दिखाई देते थे। नीचे नीचे उतर रहे हैं; बहुत नीचे आगये। गुरला के १६००० फीट ऊंचे घाटे से चले थे, धीरे धीरे १३००० फीट तक आगये होंगे। छोटे छोटे ग्राम सामने हैं। हुणिओ की औरतें खेतों में काम कर रही हैं। ग्राम के बाहर भूत भगाने के सामान हैं; 'ओम माने पद्मे हुं' की कतारें लगी है; झंडियां गड़ी हैं; मूर्तियां भी बनाई हुई हैं।

चार बजे के बाद तकलाकोट की पहली मण्डी मे पहुंचे। यहां हज़ारों भेड़ें जमा थीं, दुकानें लगी हुई थीं। हमने रुकना उचित नहीं समझा। एक कठिन चढ़ाई चढ़ने के बाद दूसरी मंडी मे पहुंचे। यहां श्रीलालसिंह जी के यहां ठहरने का प्रबन्ध किया। भोजन बना कर खाया और मुर्दो की तरह सो रहे।

पच्चीसवाँ पड़ाव

तकला कोट

मान्धाता पर्वत के ठीक नीचे तक़लाकोट मण्डी है। व्यास, चौंदास, दारिमा, तथा नैपाल के व्यापारी इस मण्डी मे अपना माल बेचने आते है। इधर के भारतीय घाटे का नाम लीपू लेख है। तकलाकोट से यह सात मील पर होगा। यह मण्डी यहां की तीन नदियों के संगम पर बसी है और इसके तीन तरफ ऊंची

पहाड़ियां हैं। भूमि अत्यन्त फलदा है। नदियो के जल का नहरो द्वारा सदुपयोग किया गया है, चारो ओर भूमि सींचकर अन्न बोया जाता है। जहां जल नहीं पहुंचा, वहां की भूमि तो गज रूप धारण किये बैठी है। वर्षा इधर अधिक नहीं होती, जो कुछ अनाज उत्पन्न होता है, वह सिंचाई द्वारा ही होता है।

तकलाकोट के ज़िले मे सैतीस ग्राम हैं। ये नदियो के किनारे बसे है। यहां के घर पत्थर के होते हैं, ऊपर से मिट्टी पुती रहती है; काम लायक अच्छे होते है। प्रत्येक ग्राम के पास जौ और मटर के खेत देखने मे आए। श्रीखोचरनाथ※ मठ की ओर रास्ते मे बराबर हरियाली ही हरियाली है। भूमि बड़ी उपजाऊ है। वृक्षो का सर्वथा अभाव न जाने क्यो है? जिस भूमि मे जौ और मटर हो सकते है, वहां फ़लो के वृक्ष क्यों न होगे; मालूम होता है किसी ने यत्न ही नहीं किया।

भोटिए लोगो ने अपने घर दीवारें खड़ी कर बनाये हुए है; ऊपर से कपड़े तान लेते है। जब मण्डी का ऋतु हो चुकता है तो कपड़े की छतो को उखाड़कर अपने अपने घर ले जाते हैं। दीवारे खड़ी रहती है। बहुत से घर गुफाओ के अन्दर है। जहां जिसको थोड़ी बहुत सुविधा मिली है, वहीं उसने खोद-खाद, लीप पोत कर घर का स्वरूप खड़ा कर लिया है। ग्यानिमा से यह मण्डी बहुत अच्छी जगह पर है, यहां न तो उतनी सर्दी ही है और न हुणिओं का उतना जंगलीपन; करनाली नदी इनकी बहुत कुछ सफाई कर देती है। नदी के दोनो तरफ ऊंचे

※श्री खोचरनाथ मठ तकलाकोट से छः सात मील पर है। यात्री एक ही दिन में उसे देख आ सकता है—लेखक

किनारे हैं। इन्हीं किनारों पर, चौरस भूमि मे तकलाकोट की मडी भरती है।

यहां एक मठ है। लामा लोग अपने चेले चेलियो के साथ इसमे रहते हैं। छोटे छोटे लड़कों को चेला करते है। उनके सिर मूड़ कर उनका नाम 'चुंग चुंग' धरते है। सोलह वर्ष की अवस्था मे उन लड़को की परीक्षा लेकर उपाधियां दी जाती है। जो ब्रह्मचर्य्य का कठिन व्रत लेकर दीक्षित होते है, उनको 'गिलो' कहते हैं। साधारण लामाओ को कठोर नियमो का पालन नहीं करना पड़ता, ऐसे लामा तिब्बती भाषा में 'दाबा' कहलाते है।

तकलाकोट से दो मील के फासले पर टोओ नाम का ग्राम है। यहां सरदार ज़ोरावर सिंह जी की समाधि है। सन १८४१ ई० मे कश्मीर नरेश गुलाबसिंह जी की आज्ञा से सिक्ख सेना-नायक ज़ोरावरसिंह ने १५०० सैनिकों को साथ लेकर तिब्बत पर हमला किया था। कैलाश जी के पास बरखा के मैदान मे उस शूरवीर ने ८००० तिब्बतिओ को पराजित कर तकलाकोट मे आकर डेरा जमाया। बाद मे चीन सरकार ने तिब्बती लामाओ की सहायता के लिये फौजे भेजीं। ज़ोरावर सिंह, अपने बहादुर कमान बस्तीराम के सुपुर्द अपनी फौज कर आप मुट्ठी भर आदमियो के साथ अपनी धर्मपत्नी को लदाख छोड़ने चला गया, ताकि लौट कर निश्चिन्तता से युद्ध कर सके। यही उसके नाश का कारण हुआ। चीनी फौज तिब्बतियो की मदद के लिये आ पहुंची और उसने ज़ोरावरसिंह को रास्ते मे आघेरा। इतनी बड़ी फौज के सामने मुट्ठी भर आदमी क्या कर सकते थे, सब घिर गये और उनकी बोटी बोटी नोच ली गई।

अब बस्तीराम के लिये क्या रह गया, वह अपने साथियों के साथ भारत की ओर भागा। सामने लीपूलेख बर्फ से ढका

था, उसका पार करने मे वहुत से सिक्ख सिपाही वीरगति को प्राप्त हुये ; थोड़े से असह्य कष्ट झेलकर जीते घर पहुंचे और दूसरो का देश छीनने के पाप को आजन्म न भूले ।

उसी सिक्ख सेनानायक जोरावर सिंह की समाधि टोओ मे है। तिब्बती लोग उस भारतपुत्र के वीरत्व की अब तक प्रशंसा करते है और उसकी समाधि को पूजते है ।

मडी मे मै छः अगस्त से नौ अगस्त तक रहा । अपने थके हुये शरीर को आराम दिया, भोटिए भाइयो को उपदेश भी सुनाया। इनमे शिक्षा का बिलकुल अभाव है, शराब व्यभि· चारादि दोष अधिक है । ये लोग हिन्दूधर्म से दूर हैं ; इनमे तिब्बतीपन अधिक घुसा हुआ है ।

ग्यानिमा मंडी की तरह यहां भी भोटिए व्यापारी हुणिओ के साथ माल का अदल बदल करते है। मानसरोवर के इर्द गिर्द घास के बड़े बड़े मैदान हैं, इसलिये अधिकांश ऊन उधर से आती है। तकलाकोट के महाजन इस ऊन को खरीदकर तनकपुर भेजते है। वहां बम्बई, कलकत्ता, कानपुर, धारीवाल आदि नगरो मे स्थित कारखानो के एजेन्ट सरदियो मे इकट्ठे होते हैं; तिब्बती ऊन यहीं खपती है ।

आजकल मंडी जोरों पर थी, खूब माल बिक रहा था । श्री· लालसिह जी होशियार व्यापारी है; इनकी साधु महात्माओं पर भी बड़ी श्रद्धा है। आपके यहां ठहरने से मुझे सुख मिला, इसके लिये उनका मै बड़ा कृतज्ञ हूं ।

१० अगस्त मंगलवार—खच्चर की सवारी का प्रबन्ध कर लिया था । आठ बजे सबेरे चल पड़े । नदी पारकर दक्षिण दिशा की ओर चले। रास्ते मे पांच चार मील तक मखमली

हरियाली आंखों को आनन्दित करती है। स्थान स्थान पर छोटी छोटी नालियां खोद कर पानी खेतों में पहुंचाने का प्रबन्ध है। सामने हिमालय है—इस तरफ़ तिब्बत और उस ओर प्यारा भारत—बढ़े चले गये। एक पथ-प्रदर्शक मेरे साथ था। हिमाचल के निकट पहुंचने पर ज़ोर की वर्षा आध घंटा भर हुई; नदी चढ़ गई; खच्चर ने उसको कठिनाई से पार किया।

अब लीपूलेख की ओर चलते हैं। एक छोटी नदी के किनारे किनारे ऊपर ऊपर चढ़ रहे हैं। रास्ते में कई जगह भोटिये चरवाहे पशु चरा रहे थे। ऊपर चढ़ते हैं। हिमाचल पर बादल छाया हुआ है। सामने ऊंचे दाहिने हाथ नदी का ग्लेशियर है। खच्चर पर से उतर कर पैदल चढ़ रहा हूं। बाईं तरफ ऊंचे पर्वतों पर धुन्ध अपनी अठखेलियां दिखा रही है। गल पर पहुंच गये। यह छोटा ग्लेशियर है, इसको लांघ कर बाईं ओर चलते हैं। दोनो ओर गल ही गल हैं, सीधे जा रहे हैं। थोड़ी दूर जाकर दाहिने हाथ ऊंचे चढ़ना है। उधर दृष्टि डालने से दरवाजा सा मालूम होता है। यही घाटा है। खच्चर पर सवार आहिस्ते आहिस्ते ऊपर चढ़ रहा हूं; पथप्रदर्शक ऊपर पहुंच गया। मैं भी खच्चर को चलने के लिये कहता हूं। चला, दस कदम और बाक़ी है; ऊपर लीपूलेख घाटे पर पहुंच गया।

छब्बीसवां पड़ाव

तिब्बत की ओर एक दृष्टि

१६७५० फीट ऊचे इस घाटे पर खड़ा हूं। मेरे दाहिने

हाथ की ओर जो उतार है यह मातृभूमि की सीमा का आरम्भ है; बाये हाथ का उतार, जिसको चढकर आया हू, तिब्बत की ओर जाता है । इधर ही एक दृष्टि दौड़ाता हूं। उत्तर पूर्व की तरफ मान्धाता की चोटियां अपनी शान दिखा रही है। यहां कुगरी बिङ्गरी जैसी भयानक सरदी नही। अपनी यात्रा पर विचार करता हू।

कुगरी बिगरी घाटे द्वारा पश्चिमी तिब्बत मे प्रवेश करने के बाद भोजन के कैसे कैसे कष्ट झेलने पड़े, लेकिन मेरी यात्रा का मूल्य मुझे मिल गया—मैने वे दृश्य देख लिये, जो ससार में अद्वितीय है । जिस तिब्बत का नाम ही सुनते थे, उसे देख लिया, जिन लामाओं की कथा पढ़ते थे उनसे भेट करली; जिस कैलाश जी के गुणानुवाद पुराणों ने गाए हैं, उसके साक्षात् दर्शन कर लिये; जिस मानसरोवर की महिमा योगी लोग बखानते है, उसकी सुन्दरता देख ली: उसमे स्नान भी कर लिया; पाओ को बेशक बड़ा कष्ट हुआ, परन्तु वह कष्ट थोड़े ही दिन के लिये था। तिब्बती दृश्यों की शोभा का आनन्द सारी आयु भर न भूलेगा।

वाहरे तिब्बत ! तू भी एक विचित्र देश है । ससार में सब से ऊंचा और सब से निराला है। क्योंही अच्छा हो, यदि तेरे बच्चे भी जाग उठे और संसार की गति के अनुसार अपने जीवन को बनालें। मेरी बड़ी इच्छा तेरे एक सिरे से दूसरे सिरे तक घूमने की है। मै मानसरोवर के किनारे महीनो रहना चाहता हूं, किन्तु तेरी वर्तमान स्थिति मे मेरा ऐसा करना असंभव सा है। जब तक चीन और भारत वर्ष सोते हैं, तू भी तब तक

खुर्राटे ही लेता रहेगा; चीन और भारत के भविष्य पर तेरा भविष्य निर्भर है।

तू धातुओं से परिपूर्ण तो है, पर वे तेरे लिये कुछ लाभदायक नहीं। तेरे बच्चे मुश्किल से पेट पालते हैं। तेरे यहां जब तक शिक्षा जोर शोर से न फैलेगी, तब तक तेरी सतान की दशा भी सुधर नहीं सकती—भगवान् बुद्धदेव ने जो धर्म तेरे बच्चों को सिखलाया था, वह बड़ा शुद्ध और निर्मल है। जब तेरे शिक्षक भारत-वर्ष की धार्मिक अवस्था बिगड़ गई, तो तू कैसे अच्छा रह सकता था, अब भारत की दशा बदलने लगी है। क्या भारपुत्र अपने प्यारे शिष्य तिब्बत को भूल जायँगे ? कभी नहीं। तिब्बत पर हमारा धामिक अधिकार है ; हमे तिब्बत को धर्म सिख-लाना है। हम अपने पूज्य तीर्थो—श्री कैलाश और मानसरो-वर—पर अपने धार्मिक झंडे गाड़ने चाहियें। आवश्यकता है कि यहां हमारे मठ बने और हमारे धर्मोपदेशक अपने पुराने काम को नये उत्साह के साथ आरम्भ करें। क्या भगवान् बुद्ध का परिश्रम वृथा ही जायगा ? कभी नहीं।

आर्य सन्तान ! उठिए, भगवान् शाक्य मुनि के पदो का फिर अनुसरण करिए। तिब्बत हमारी बाट जोह रहा है ; वह आर्य सभ्यता से परिष्कृत होना चाहता है। आओ, एक बार फिर तिब्बत मे आर्य सभ्यता का डंका बजायें।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

मर्म जीवन का छिपा है दुःख में,
विश्व-रचना का यही साहित्य है।
है हमारे पतन का इतिहास सुख ,
दुःख से उत्थान होना सत्य है ॥

('अनुभव' में से)

चतुर्थ खण्ड

सत्ताईसवां पड़ाव

भारत प्रवेश

१० अगस्त मङ्गलवार—तीन बजे के करीब भारत मे प्रवेश किया। हिमालय का यह द्वार लीपूलेख बड़े सुभीते का है; उतार की पगडण्डी नदी के किनारे किनारे चली गई है। यद्यपि उतार कहीं कही कठिन है, मगर मार्ग मे किसी प्रकार का भय नही लगता। न इधर ऊटाधुरा जैसे ग्लेशियर ही है और न वैसी विकट चढ़ाई ही। सुन्दर सुहावनी हरियाली को देखता हुआ यात्री मजे मे चला जाता है। काली नदी यही से निकलती है; इसकी धार यहां बिल्कुल छोटी सी है।

घाटी मे खच्चर पर चढ़ा हुआ जा रहा हूं, पथप्रदर्शक साथ है। दोनो ओर पहाड़ो दीवारो पर कहीं कही हिम पड़ी है; वह पिघल पिघल कर नीचे आ रही है। रास्ते में व्यापारी लोग जाते हुए मिले। इधर इस घाटे मे जगह जगह धर्मशालाए है, ठहरने के स्थान बने है पहाड़ी धर्मशालाए मामूली एक मंजिल की पत्थरो से छाई हुई छोटे छोटे दरोवाली होती है। दरो मे किवाड़ नही लगाए जाते; जितने दर उतनी ही कोठरियां बनी रहती है। उनके बनाने मे पहाड़ी तेज़ हवा

से] बचने का ध्यान रखा जाता है । छत्तों की ऊंचाई इतनी कम होती है कि मनुष्य कोठरी मे सीधा खड़ा नहीं हो सकता। साथही कोठरियां तङ्ग भी बनाई जाती है ताकि उनके गरम रखने में अधिक ईंधन की ज़रूरत न पड़े।

आज शाम को काली के किनारे ऐसी ही धर्मशाला मे डेरा किया। एक यात्री उस धर्मशाला मे पहले से ठहरा हुआ था। उसने रोटी बनाई। पेट पूजा कर आनन्द से सो रहे।

११ अगस्त बुधवार—कालापानी ग्राम मे पहुंचे। यहां कई चश्मों से जल निकल निकल कर काली में गिरता है। भोटिए इन चश्मों के जल को काली का स्त्रोत समझ यहां बड़ी श्रद्धा से स्नान करते हैं। काली के किनारे किनारे जा रहे हैं। काली नदी अल्मोड़ा जिले को नैपाल से अलग करती है—इस तरफ अल्मोड़ा है और नदी पार नैपाल—इधर मे अपराधी उधर नैपाल के जगंलो मे भाग जाते हैं। नदी का पाट तो बड़ा छोटा है, किन्तु स्वरूप चामुण्डा जैसा है। अब हमको बराबर इसके किनारे बड़ी दूर तक जाना है। जैसे गोरी ने जोहार का रास्ता पर्वतो को काट कर बनाया है, ऐसे ही काली ने इधर के पर्वतो को फोड़ कर बड़ी मुश्किल से अपना मार्ग निकाला है। आज कई दिनों के बाद देवदारू के वृक्षो की कतारे देखने में आईं; हिमालय के वन्य दृश्य फिर आरम्भ हो गये। तिब्बत की रुंड-मुण्डता दूर हो गई। चित्त में कैसी प्रसन्नता होती है। वृक्षो की डालियां समीर के झोंकों से आनन्दित हो पहाड़ी राग गारही हैं। अपने हितकर, अपने अनुकूल जल वायु मे आगये, यह बड़ा सुखदायी है। पवन के झकोरो में पास के पहाड़ी खेतो की सर सर ध्वनि सुनता हुआ जा रहा हूं। मातृभूमि

किस प्रेम से स्वागत कर रही है; अपने बच्चे को गोद में ले रही है। आहा! इस आल्हाद का क्या वर्णन करूं।

तकलाकोट से गर्ब्याङ्ग २७ मील है। आज मुझे वहीं जाना था। आधे से अधिक मार्ग तो पहले दिन ही आ चुके होंगे, आज का रास्ता आसान, दृश्य मनोहर, निर्मल आकाश, अनुकूल जलवायु—हंसता हुआ जा रहा था। तिब्बत से कुशल पूर्वक लौट आया, इसको स्मरण कर फूला न समाता था। जो उद्देश्य था, वह हो गया। सच है, किसी कार्य की सफलता का आनन्द भी बिलकुल निराला ही होता है।

अट्ठाईसवां पड़ाव

गर्ब्याङ्ग

मध्यान्ह के बाद गर्ब्याङ्ग के पास पहुंचे। यहां काली नदी का पुल पार कर ग्राम की तरफ आगये, क्योंकि आज हम काली के नैपाल वाले किनारे किनारे आए थे। गर्ब्याङ्ग इस ओर का आखिरी पोस्ट आफिस है। जैसे जोहार की तरफ मनस्यारी सब से आखिरी डाकघर है, ऐसे ही इधर गर्ब्याङ्ग है। काली नदी का पुल पार कर ऊंची चढ़ाई चढ़ने के बाद गर्ब्याङ्ग पहुंच गए। यहां मेरे इधर आने की सूचना कई प्रेमियों को पहले से थी, इसलिये कोई कष्ट नही हुआ। रहने का ठीक ठाक कर लिया।

गर्ब्याङ्ग की अधित्यका (प्लेटो) समुद्री तल से दस हज़ार फीट की ऊंचाई पर है, अल्मोड़े से साढ़े चार हज़ार फीट ऊंचा समझिये। लीपूलेख घाटे द्वारा तिब्बत में प्रवेश करने वाले व्यापारियों का यह मुख्य थान है, इसलिये यहां अनाज

तथा अन्य विक्रयार्थ वस्तुओ का सग्रह किया जाता है। व्यास और चौन्दास के लोग यहां आकर ठहरते हैं और यहीं के पोस्ट-ऑफिस द्वारा उनका रुपया तिब्बत मे जाता आता है। मई मे अक्टूबर तक यहां स्कूल और डाकखाना आदि रहते हैं। जाड़ों में भोटिये लोग नीचे धारचूला मे चले जाते हैं। यहां अच्छे पक्के सुदृढ़ घर बने है। लोगो की आर्थिक दशा अच्छी है। इनके चेहरे भी मंगोलियन है। अंग प्रत्यग खूब मज़बूत होते हैं। सभ्यता का प्रभाव धीरे धीरे हो रहा है। समाचार पत्र आते हैं। यहां के विद्यार्थी अल्मोड़ा पढ़ने जाते हैं। लोग बड़े उत्साही हैं। कुछ वर्षो बाद शिक्षा फैलने से इनके आचार व्यवहार अच्छे हो जायेंगे, अभी तो तिब्बतियो की सगत से जहालत की टोकरी विद्यमान है। गलियां गन्दी, स्कूल के आस पास गंदा, मकानो के आंगन गन्दे, कहां तक कहूं—सफाई के तो यह लोग मानो दुश्मन है।

यहां मै तीन दिन रहा। मेरा स्वास्थ्य कुछ बिगड़ गया था, खाना पचता नहीं था। तकलाकोट मे एक दिन मैने मोटे बड़े बड़े उड़द बनवाकर खाये थे। उस ऊंचाई में भला मोटे उड़द कैसे पक सकते है, मै उनको कच्चे ही खागया, उसी भूल का दण्ड भरना पड़ा। एक सप्ताह भर मुझे अजीर्णता की शिकायत रही, इसके बाद फिर अच्छा होगया।

१४ अगस्त शनिवार—गर्ब्याङ्ग के आगे निरपनियां का बड़ा विषम और दुर्गम पथ है। आज कल वर्षा के कारण उसने भीषण रूप धारण किया था। कोई कुली मेरा असबाब उठाकर साथ जाना नहीं चाहता था। एक प्रेमी की सहायता से कुली का ठीक ठाक किया। आज भोजनोपरान्त चल पड़े।

गर्ब्याङ्ग से बुदी चार मील है। आज वहीं रात काटने की

सलाह थी। ग्राम से निकलते ही उतार आरम्भ हो जाता है, बुदी तक कठिन उतार है। तीन घंटे मे मार्ग तै किया; बुदी के स्कूल मे ठहरे; स्कूल के अध्यापक महाशय ने भोजनादि का यथोचित प्रबन्ध कर मुझे अनुगृहीत किया। रात यहीं रहे।

उन्तीसवां पड़ाव

निरपनियां

१५ अगस्त रविवार—सबेरे चले। बुदी से मालपा तक रास्ता खराब है; वर्षा के कारण रास्ता स्थान स्थान पर टूटा हुआ मिला। काली नदी काटखाने को दौड़ती है; उसीके किनारे किनारे जाना था। दो तीन जगह ऐसे जल प्रपात मिले, जो यात्री के ठीक सिर पर गिरते हैं। ऊपर से जल प्रपात, नीचे काली का भयंकर नाद, गज भर के करीब चलने की जगह और उस पर काई जमी हुई, ऐसे पथ पर चलने वाले यात्री की मानसिक परिस्थिति क्या होगी? इसका अनुमान पाठक स्वयं लगाले।

१२ बजे के करीब मालपा पहुंचे। यहां चट्टान के ऊपर घास की एक झोपड़ी है इसी मे डाकखाने के हरकारे लोग ठहरते है। इनका काम मालपा से गर्ब्याङ्ग तक डाक पहुचाना है। मालपा से गालागाड़ आने जाने वाले हरकारे भी यहीं ठहरते है। काली नदी के ठीक सामने पर इनकी झोपड़ी है। नदी की सारी लीला यहां से दिखाई देती है। एक दूसरा पहाड़ी नाला यहां काली मे मिलता है। आज यह बड़े जोरो पर था। मैंने बहुतेरा यत्न इसके पार करने का किया, मगर सफलता न हुई। बहुत अधिक जल इसमे न था, मुश्किल से मेरी कमर तक होगा, पर धक्के गजब के देता था। जहां से मेरी इच्छा

इसे पार करने की थी, वहां से काली पांच गज़ पर होगी; ज़रा सा पाओं के उखड़ने की देर थी, बस फिर तो पार करने वाले का अन्त ही समझिये।

इस तङ्ग घाटी में खड़ा छटपटा रहा हूं। मेरे दाहिने हाथ पहाड़ी नाला बड़े वेग से चट्टानो पर से कूदता हुआ आरहा है, बायें हाथ काली बड़ी निर्दयता पूर्वक चट्टानों का संहार कर रही है; उस संगम पर मै ऊंचे पत्थर का आश्रय लिए खड़ा हूं। मेरी कुछ भी पेश नही जाती, जल मेरा रास्ता रोक रहा है। सामने पहाड़ी नाले के पार गालागाड़ से आने वाला हरकारा बैठा है। वह बेचारा भी क्रोध से पहाड़ी नाले की ओर देख रहा है। नाले ने लकड़ियो के पुल को तोड़ डाला है। आज पुल नही बन सकता; कल बनाया जायगा।

पाठक, आप शङ्का करते होगे कि पहाड़ी नाले ने पुल कैसे तोड़ डाला? कृपया ज़रा इधर के पुलों का चित्र तो अपने मन मे खींचिए। किसी वृक्ष की बड़ी मोटी लम्बी शाखा को काटकर नाले के आरपार रख देते हैं, बस यही इधर का पुल है। यदि उसमें कुछ वैज्ञानिक बुद्धि का प्रयोग करना हो तो एक लम्बे काष्ठ की बजाय दो काष्ठ रख दिए और दोनो के बीच जो खाली स्थान रहा उसको पत्थरो से ढक दिया। ऐसा पुल इधर बड़ा सुदृढ़ समझा जाता है और उसपर हज़ारो रुपए के माल से लदे हुए पशु बेखटके आते जाते हैं। जिस काष्ठ के पुल पर हम लोग पांच दस रुपये मिलने पर भी पाओं न रखें, उस पर भोटिये लड़के बाज़ीगरों की तरह कूदते चले जाते है। यह सब अभ्यास की बात है।

आज रात काली के किनारे गुफा मे रहे। सारी रात जल

बरसता रहा। पिस्सुओ के मारे अच्छे प्रकार सोना नही हो सका।

१६ अगस्त सोमवार—भोर होते ही हरकारे लोग नाले का पुल बनाने की चेष्टा करने लगे। मैंने तो एक हृष्टपुष्ट पहाड़ी नवयुवक की मदद से पुल बनाने के पहले ही नाला पार कर लिया। थोड़ी देर बाद दो चार आदमियो ने मिलकर एक मोटे लट्ठे को जल के आरपार रक्खा। इसी खौफनाक एक लट्ठे के पुल पर से बाकी सामान पार उतारा गया। पथप्रदर्शक के साथ आगे बढ़ा अब निरपनियाँ की विषमता मालूम हुई।

ऊंचे पर्वत पर चढ़ रहा हूं। रास्ता कही गज़ भर है, कहीं आध गज़, टूटा हुआ; पाओ फिसलते हैं। ऊपर चढ़ने मे पौधो की टहनियाँ पकड़ पकड़ कर चढ़ता हूं। यदि कहीं भूल से पैर इधर उधर हो जाय, -तो फिर सैकड़ों फीट नीचे-घाटी मे जाकर हड्डी हड्डी सब टूट जाए। रास्ता कीचमय-है; मिट्टी फिसलाऊ है। ऊपर ऊपर जा रहा हूं। इस पहाड़ के ऊंचे शिखर पर पहुंचना है। काली नदी, नीचे, नीचे, नीचे, उसकी मद मंद आवाज़ आ रही है। यह लो ! गड़गड़ !! वह सामने बड़ा ढोका किस तेजी से नीचे फिसलता जा रहा है; इसकी गर्जना हृदय को कम्पायमान करती है। परमदेव, परमदेव, आप ही सहायक है।

पहाड़ के ऊपर शिखर पर पहुंचे। यहां से इर्द गिर्द दृष्टि दौड़ाई। बादल कही नीचे, कहीं चोटियो पर विचर रहे थे। पूर्व की तरफ सामने नैपाल के पहाड़ है, उनकी चोटियां बादलो से ढकी है। वर्षा इस समय बन्द है। यहां बैठकर सत्तू खाया और कमण्डलु भर जल पिया। पथ-प्रदर्शक चलने

को कह रहा है; अभी ऐसे ऐसे दो तीन पहाड़ और पार करने हैं।

चल पड़े। अब नीचे उतर रहे हैं। इधर बायें हाथ दृष्टि दौड़ायें तो आंख कहीं ठहरती नहीं, एक दम नीची घाटी है। कमजोर दिल मनुष्य को तो यह नीचाई देखकर ही चक्कर आने लगे। जैसे ऊंचे आये थे, वैसे ही नीचे जा रहे हैं। नीचे जाना ऊपर जाने से भी कठिन है; यहां गिरने का अधिक भय रहता है। एक तो महा कठिन उतार, दूसरे भीगा हुआ रास्ता, तीसरे बेढब फिसलन, घास पकड़ पकड़ कर नीचे उतरता हूं, एक एक इञ्च भूमि के लिये लड़रहा हूं। उतरते उतरते, नीचे काली के किनारे पहुंच गए। अब फिर ऊपर चढ़ना है।

बड़ा भयङ्कर रास्ता है। पुराने मार्ग से, मीलों का चक्कर खाकर जाना है। जो रास्ता अधिकारियो ने बनवाया था, उसको नदी बहा ले गई; आज कल पुराने बाबा आदम के समय के रास्ते से सब लोग आते जाते है। जिस पथ-प्रदर्शक के साथ मैं था, उस मूर्ख ने उस पुराने पथ को भी छोड़ कर, ऐसा दुर्गम पथ धर लिया कि जिधर से भेड़ बकरी भी कठिनाई से जासके। एक सीधी ऊंची चट्टान है; उसकी भीत पकड़, धीरे धीरे जा रहा हूं। यदि इस समय वर्षा हो जाय तो मैं निस्सन्देह नीचे घाटी मे गिर पड़ूं। बैठ बैठ कर चलता हूं; ओ ईश्वर! ऐसा रास्ता!! सारी यात्रा मे निरपनियाँ जैसा बेढब पथ नहीं मिला। कई बार गिरते गिरते बचगया; धोखा देने वाला मार्ग है; यहां तेज आखों की आवश्यकता है। पथ-प्रदर्शक को पुकार कर साथ साथ चलने के लिये कहता हूं। ओ३म्! ओ३म्!! का जाप करता हुआ जा रहा हूं ताकि यदि गिर भी जाऊं तो परम पिता

का नाम स्मरण करते हुए प्राण निकले।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

इस उतार के अन्त होने पर निरपनियां का भी अन्त हो जायगा। अब नीचे काली के किनारे पर फिर आ गए। यहां पथ बिल्कुल टूटा है; पथ प्रदर्शक की सहायता से किसी प्रकार इसे तै किया। यहां से आगे यद्यपि चढ़ाई है, पर रास्ता निरपनियां जैसा खराब नहीं। उस चढ़ाई को आरम्भ करने से पहले यहां नदी किनारे बैठकर सत्तू खाया; वर्षा हो रही है।

तीसवां पड़ाव

गाला गाड़

भीगते भागते चले। चढ़ाई चढ़ रहे हैं। सैकड़ों सीढ़ियां चढ़ गए। दो घटे के बाद पहाड़ के ऊपर पहुंचे; यहां से गालागाड़ दिखाई देता है। पौन घटे के बाद वहां पहुंच गए। यहां का बगला रुका हुआ था; इस कारण ऊपर एक गृहस्थ के घर के पास ठहरे। खाने, पीने, सोने का प्रबन्ध सब हो गया। कपड़े भीग रहे थे, उनको सूखने के लिये डाल दिया; खूब आग जलाई। रात को पहाड़ो के टूटने और बड़े बड़े पत्थरों के खिसकने की गर्जना सुनते रहे। मुश्किल से तीन चार घंटे सो सका।

१७ अगस्त मगलवार—गर्ब्याङ्ग की धर्मात्मा रूमा देवी ने मेरे लिए हरकारे के हाथ चावल और अन्य खाने का सामान भेजा था। उस देवी को मैंने हृदय से धन्यवाद दिया। उस रसद से मुझे बड़ी सहायता मिली।

आज सबेरे गालागाड़ से चले, अच्छा मार्ग है, ऊंचे ऊंचे

चढ़ते चले गये । मुझे चौन्दास पहुंचना था । गालागाड़ से चौंदास १२ मील है । चढ़ाई के बाद बढ़िया उतार है । सीटी बजाता हुआ, भजन गाता हुआ जा रहा था ।

तुमही करतार हो दुखों से बचाने वाले ।
अपने भक्तों को सदा पार लंघाने वाले ॥
भक्त प्रह्लाद को पर्वत से बचाया तैने ।
कष्ट भूमी में सदा साथ निभाने वाले ॥

आनन्द में मस्त जा रहा था । जहां प्यास लगती, झरनों का ठण्डा स्वच्छ जल पी लेता । पर्वतेश्वर हिमालय के सुरम्य दृश्यों को देख देख मन मुदित हो रहा था । देवदारू उन्नत मुख किये सुमधुर स्वर से सर सर नाद कर मेरे चित्त को आह्लादित करते थे । जंगलो की अनोंखी छटा का मजा लेता हुआ आगे बढ़ा । सड़क कहीं कहीं घने वृक्षो से आच्छादित है ; पादपो की शाखायें एक दूसरे के गले मे बांह डाले प्रेम-पाश मे बन्धी हैं । कहीं कहीं पत्तों पर से वर्षा के बिन्दु टप टप गिर रहे थे ।

इकतीसवां पड़ाव

चौन्दास

इस प्रकार ठण्डी सड़क की सैर का सुख भोगते हुये एक स्रोत के पास पहुंचे । यहां बैठकर सत्तू खाया और पेट पूजा कर फिर बढ़े । अब पहाड़ी ग्राम दृष्टिगोचर हुये । कृषक लोगों की आवाज़ भी सुनाई देने लगी, पहाड़ी सीढ़ियों जैसे खेत फिर दिखाई दिए । ग्राम में पहुंचे तो वहां कई विद्यार्थियो से भेंट हुई । यह ग्राम पर्वत स्थली मे स्थित है; इसके

चारो ओर अपूर्व दृश्य है, स्वर्गीया अमरीकन मिस शेल्डन का बगला भी यही है। यहां कुछ देर सुस्ता लिया।

चौन्दास का इलाका भी बड़ा रमणीक है। जल वायु नीरोग, बन शोभा विशिष्ट, प्राकृतिक सौन्दर्य अनुपम और लावण्यमयी भू श्री यहां विराज रही है। ६००० फीट की ऊचाई पर के ये ग्राम समूह इन दिनो सुन्दर विहार स्थल बन जाते हैं।

❀ · ❀ ❀ ❀ ❀

हिमाचल की इस रम्य पर्वत स्थली तथा व्यास और दारिमा की पट्टिओ मे जो भोटिए रहते है, उनमे बड़ी बड़ी भद्दी रस्मे प्रचलित है। जैसे पाश्चात्य देशो मे स्त्रियो को स्वतन्त्रता है, वैसे ही, बल्कि उससे भी अधिक स्वच्छन्दता इधर की स्त्रियो को दी जाती है। इनके यहां 'रामबग' की चाल है। प्रत्येक ग्राम मे एक घर ऐसा बनाते है, जहां युवक और युवतियां रात को स्वतन्त्रता से मिल सके। इस घर को 'रामबग' अथवा 'क्लबहौस' कहिए। रात के समय युवक लोग अपनी प्यारी युवतियो के साथ यहां इकट्ठे होकर शृङ्गार रस के गीत गाते है; मद्य पान करते है; धूम्रपान कर हृदय जलाते है। सारी रात यही धन्धा रहता है। जब मद्य का नशा खूब चढ़ जाता है तो यही क्लब-हौस मे सो रहते है।

छोटी छोटी लड़कियां, आठ दस वर्ष की अवस्था से ही, इस भाटिआ क्लब हौस मे जाना आरम्भ करती हैं। माता पिता खुशी से अपनी सन्तान को इस नाश-गृह मे भेजते है। जब किसी युवक को लड़कियो के प्रेमालाप की चाह होती है, तो वह रात को अपने घर से निकल, किसी ऊची चट्टान पर खड़ा हो अपने दोनो ओठो पर अंगुलियां रख सीटी बजाता

है। उस सीटी को सुनते ही युवतियां अपने घरों से आग ले ले कर निकलती है और 'रामबंग' की ओर चल देती हैं। ग्राम के अन्य नवयुवक भी सीटी सुनते ही प्रसन्न हो उधर ही मुंह करते है। वहां लड़कियां और लड़के आमने सामने बैठ जाते है; खूब नाच रग होता है। यदि लड़कियों की इच्छा लड़को के बुलाने को हो, तो वे किसी चद्दर के सिरे को पकड़ कर हवा मे हिलाती हैं, या सीटी देकर अपना अभिप्राय प्रगट करती है।

इस प्रथा का परिणाम बड़ा भयंकर है—जवानी की अवस्था, एकान्त स्थान, शराब की मस्ती, नाच रंग की हिल-मिल, रात का समय—इन सब कारणों से भोटिआ समाज मे पातिव्रत धर्म का ह्रास होगया है। भोटिए भाई इस बात को बिलकुल भूल गए हैं कि आर्य सभ्यता का श्रेष्ठ, सर्वोत्तम रत्न पातिव्रत धर्म है। इसमे कोई सन्देह नहीं कि जिस आपत्तिकाल में आर्य क्षत्रियो ने इन कठिन, दुर्गम पर्वतो मे आकर शरण ली थी, उस समय यहां के एकान्त—यहां की निर्जनता—ने उनको बेतरह सताया होगा। समय काटने के लिये उन्होने कोई न कोई उपाय दिल बहलाने का किया होगा। परदा तो उनमें था ही नहीं, इसलिये इस प्रकार की प्रथा का चल जाना आश्चर्य्यजनक नहीं है। सभ्यता के केन्द्र से दूर रह कर उन्होंने इसी तरीके से विवाह की समस्या को हल किया होगा, किन्तु इस समय इस प्रथा को बहुत जल्द दूर करने की आवश्यकता है। इस प्रथा से जारज सन्तान, व्यभिचार, भ्रष्ट कुलाचार आदि दुर्गुणों की समाज मे वृद्धि होती है। लड़के लड़कियां आपस मे मिले, वार्तालाप करे, एक दूसरे के स्वभाव की पहचान करे और उनका विवाह बड़ी अवस्था मे आपस की स्वीकृति से हो, यह सब से अच्छा है, परन्तु युवक और युव-

तिओं को मद्यपान की खुली छुट्टी, एकान्त मे राते काटना, शृङ्गार रस के गीत, ये सब ब्रह्मचर्य्य की जड़ पर कुल्हाड़ा चलाने के सामान है। जहां तक हो सके, इस प्रथा को शीघ्र दूर करना चाहिये। मै अपने शिक्षित भोटिए भाइयो से नम्रता पूर्वक निवेदन करता हू कि वे अपनी इस बुरी प्रथा का सशोधन कर अपने समाज की रक्षा करे।

इधर के लोगो मे एक और भी भोंडा रिवाज है, जिसको ये लोग 'ध्रुङ्ग' कहते है। जब कोई आदमी या औरत मर जाती है तो उसके सम्बन्धी दाह कर्मादि से निश्चिन्त हो, अपने ग्राम के बड़े बूढ़ो को बुलाकर ध्रुङ्ग के विषय मे परामर्श लेते हैं। ध्रुङ्ग सस्कार के लिए एक तिथि निश्चित की जाती है। यदि मरने वाला, पुरुष हो तो सस्कार के लिए नर पशु चुना जाता है। भेड़, बकरी, याक इन में से जो पशु उचित समझा जाए, उसी को मृत प्राणी का प्रतिनिधि ठहराते हैं। बहुत से लोग जिनपर हिन्दू धर्म का प्रभाव पड़ा है, याक (चंवर गाय) को इस कार्य्य के लिये काम मे लाने के विरोधी है। वे भेड़ अथवा बकरी से वही मतलब निकालते है। निश्चित तिथि को मृतक सम्बन्धी पशु को ग्राम से बाहर एक खास जगह पर ले जाते है, वहां उसे अच्छे अच्छे वस्त्रो से सजाते है। तत्पश्चात् पशु पर जौ फेंके जाते हैं और उसे मृतक का सच्चा प्रतिनिधि बना श्मशान भूमि मे ले जाते है, साथ ही उसके सींगो मे सफेद कपड़ा बांध देते है।

तीसरे दिन मृतक की अस्थियां इकट्ठी करके उनको बड़े लम्बे जूतो मे रख कर घर लाते है। कुछ कृत्य करने के बाद ग्राम के सब मनुष्य लम्बी कतारें बांध बांध कर नाचते हैं

और इस प्रकार भूतों की तरह नाचते हुये मृतक के घर पहुंचते हैं; वहां बड़ा जलसा होता है; खूब दावतें उड़ती हैं, खाना खाने के बाद बड़ा गुलगपाड़ा करते हुये सब लोग पीतल के बर्तनों को बजाकर नाचते हैं; लड़कियां मशालें लेकर चलती हैं।

आखिरी दिन पशु को कपड़ों से सजाकर ग्राम के बाहर दूर ले जाते हैं। वहां सब लोग उस बेचारे निरपराध पशु को पीट कर दूर भगा देते हैं। जब पशु दूर ऊंचे पहाड़ों पर अदृश्य हो जाता है तो सब भोटिये गाते नाचते ग्राम को वापिस आते हैं और मुंडन तथा स्नानादि कर शुद्ध होते हैं। तिब्बती हुणिये कपड़ों से लदे हुये उस पशु की ताक में रहते हैं, जब भोटिये अपने ग्राम की ओर लौटते हैं, तो वे उस अनाथ पशु को पकड़, काट कूट कर, खाजाते हैं।

यह इन भोटिओं की धुङ्ग नाम्नी पिशाचिनी प्रथा है। आश्चर्य्य है कि इन लोगों में यह जंगलीपन कहां से घुस आया। मालूम होता है कि यह तिब्बती संसर्ग का दोष है। मेरी कई एक पढ़े लिखे भोटिओं से इस विषय पर बातचीत हुई थी, वे सब इस प्रथा के कट्टर विरोधी हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि वे अपने समाज में घोर आन्दोलन कर इस भोंडे संस्कार को दूर करेंगे और अपने बच्चों को हिन्दू संस्कारों की शिक्षा देंगे। अब रेल और तार का जमाना है, डाकखाने खुले हुये हैं, अच्छी से अच्छी पुस्तकें पारसल द्वारा आसकती हैं, आवश्यकता है कि शुद्ध हिन्दू सभ्यता की पुस्तकों का प्रचार इन पर्वतों में किया जाये ताकि हमारे ये बिछुड़े हुये भारतीय बन्धु पुनः ऋषियों के बतलाये हुये मार्ग का अनुसरण कर सकें।

ॐ ॐ ॐ ॐ

आज रात पटवारी महोदय के घर का आतिथ्य स्वीकार किया। यही रात कटी।

बत्तीसवां पड़ाव

खेला

१८ अगस्त बुधवार—चौन्दास से चला। पौन मील तक उतार होगा, इसके बाद थोड़ी चढ़ाई, फिर बेढ़ब उतार प्रारंभ होता है। खेतों को देखता हुआ चला। नीचे काली के गूंजने की धीमी आवाज़ आ रही है और नदी सफेद सूत के तागे की तरह दिखाई देती है। मुझे इसी के किनारे पहुंचना है। सड़क स्थान स्थान पर टूटी हुई थी, वर्षा से जगह जगह नाले बह रहे थे, कई जगह पहाड़ टूट गया था, किसी प्रकार सम्भल सम्भल कर इस बेढब सीधे उतार को पूरा किया। चौन्दास से ५००० फीट नीचे आगये, धौलीगंगा यहां दारिमा से आकर काली मे मिली है, इसका पुल पार कर फिर खेला की चढ़ाई चढ़ना शुरू किया। थोड़ी चढ़ाई चढ़ने के बाद ठहरने के स्थान पर पहुंचे। यहां बड़ा सुख मिला। भोजनोपरान्त थके हारे सोगये।

१६ अगस्त से २७ अगस्त तक—खेला पांच हजार फीट ऊंचा है। अच्छा बड़ा ग्राम है। यहां पोस्टआफिस है। दारिमा और चौन्दास का यह नाका है। यहां से अस्कोट तीस मील होगा और अस्कोट से आल्मोड़ा सत्तर मील—मुझे अभी एक सौ मील और जाना है। रास्ते मे धारचूला, बलवाकोट, अस्कोट, थल, बेरीनाग आदि छः सात पड़ाव ठहरना है।

यहाँ खेला में मुझे एक पत्र मिला, जिसमें मुझे अल्मोड़ा न आने की सलाह दी थी और यह भी लिखा था कि यदि आप अल्मोड़ा आएँगे तो पुलिस आपको गिरफ्तार कर लेगी। भला मैं ऐसी बातों से क्यों डरता? मैंने आज तक कोई काम ऐसा नहीं किया था कि जिससे मुझे किसी प्रकार भी पुलिस का भय हो। शुद्ध जीवन व्यतीत करना और गीता के इस सुन्दर उपदेश को सामने रखना, बस यही मेरे जीवन का लक्ष्य रहा है—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

जिसने इस अमृत का पान कर लिया है, उसको कोई क्या डरा सकता है।

खेला से धारचूला दस मील होगा। काली के किनारे किनारे चल रहे हैं। काली भी विचित्र नदी है। इतनी बड़ी बड़ी पहाड़ी नदियां इसमें मिलती हैं, पर यह डकार तक नहीं लेती; वैसी की वैसी ही बनी रहती है। भयंकर नदी है। एक स्थान पर पहाड़ी नदी का पुल नहीं था, वहां झूले द्वारा पार होना पड़ा। बायें हाथ काली और दाहिने हाथ पर्वत के साथ साथ जारहा हूं। सड़क अच्छी है, मगर आजकल वर्षा के कारण इसकी दशा बिगड़ गई थी, मजदूर लोग मरम्मत भी कर रहे थे।

तेतीसवाँ पड़ाव

धार चूला

शाम को धारचूला पहुंच गए। यहां प्रेमी लोग आगे से ही बाट जोह रहे थे। अच्छा स्वागत किया; बगले में ठहरे। चार पांच दिन बड़े आनन्द में कटे; काली में स्नान कर उसकी लहरों के थपेड़े खाये। धारचूला पांच चार सौ घरों की आबादी का अच्छा कस्बा है। काली के उस पार नैपाल राज्य के अधिकारी रहते हैं। नदी के आर पार जाने आने के लिये रस्सियों का झूला है। दिन भर लोग आते जाते हैं। व्यास चौन्दास के भोटिए शीतकाल में यही रहते हैं, इसलिये उनके मकान आजकल खाली पड़े थे। यहां दो तीन उपदेश हुये; लोगों ने बड़ी श्रद्धा से राष्ट्रीय सन्देशे को सुना; शिक्षा की महत्ता उनको भली प्रकार मालूम हुई। पण्डित लोकमणि जी तथा पण्डित प्रेमवल्भ जी बड़े श्रद्धालु सज्जन निकले। आप दोनो ने मुझ थके हारे को आराम देने का यथोचित प्रबन्ध किया।

धारचूला से बलवाकोट दस मील है। यहाँ मध्यान्ह समय में पहुंचे। आज रक्षा बन्धन था। इसलिये असकोट के धर्मात्मा क्षत्रीपुत्र श्रीमान् खड्गसिंह जी काली नदी के तीर पर विप्रवरों के साथ ऋषि तर्पण कर रहे थे। इनके अनुरोध पर आज मैं यही ठहर गया। यहां पता लगा कि एक शेर बलवाकोट के आस पास जंगल में है। कई आदमियों को उसने खा लिया था। उसके डर के मारे ग्रामीण लोग अपने गांव से दूर घास काटने नहीं जाते थे। सब कोई उससे परेशान थे। श्रीखड्गसिंह जी उसी के मारने के लिये यहां ठहरे हुये थे पर वह नटखट पशु इनके हाथ नही आता था। जहां उसने

आदमी खाया, फौरन काली नदी पार कर नैपाल के जंगलों मे घुस जाता था और जब उधर उसके पकड़ने के सामान होते तो नदी पार कर इधर बलवाकोट की तरफ़ आजाता था। काली नदी ऐसी भयकर है कि तैर कर उसको पार करना मनुष्य के लिये महा कठिन है, लेकिन वह हिंसक पशु इसको कुछ भी नहीं समझता था। गाओं वाले बेचारे शस्त्रहीन उसके डर के मारे रात को सो भी नहीं सकते थे। बलवाकोट बड़ी गरम जगह है। यहां केवल एक रात बड़ी कठिनाई से रहा, दूसरे दिन सबेरे असकोट की ओर चले।

असकोट यहाँ से बारह मील है। रास्ते मे सुन्दर दृश्य, खिल-खिलाती हुई धूप का आनन्द तथा काली के सहायक जल प्रपातो का नाद सुनते हुये बारह बजे के क़रीब गोरी नदी के पुल के पास पहुंचे। गोरी (जोहार) मनस्यारी की ओर से आकर अस-कोट के नीचे कुछ दूर जाकर काली से मिल गई है। यहां से इसके किनारे किनारे जोहार को रास्ता जाता है। जो यात्री तनकपुर के मार्ग से शोर होकर असकोट से जोहार के रास्ते कैलाश दर्शन करना चाहते है, वे इसी मार्ग से मनस्यारी पहुंच सकते है। यहां गोरी के तटपर स्नान ध्यान से निश्चिन्त हो अस्कोट पर्वत पर चढ़े। दो तीन मील की विकट चढ़ाई चढ़ने के बाद निरोग शीतल जल वायु मे आगए। हिमाचल के नैस-र्गिक दृश्य फिर दिखाई दिये। इर्द गिर्द ऊची पहाड़ियां मेघों से खेल रही थीं। यहां के रजवार महोदय ने प्रेम पूर्वक मुझे ठहराया। श्रीमान् जगतसिंह जी महाशय का मै बड़ा धन्यवाद करता हूं, जिनसे मुझे बहुत कुछ बातें तिब्बत के विषय मे मालूम हुई। आप एक अंगरेज अधिकारी के साथ तिब्बत भ्रमण के लिये गये थे और जो कुछ उस अंगरेज को

तिब्बत सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त हुआ, वह आपही के दुभाषिया होने की बदौलत था। आप हिन्दी के परम भक्त और बडे साधु स्वभाव के है। यहां दो तीन दिन आराम किया; वर्षा की बहार देखी।

चौंतीसवां पड़ाव

असकोट

असकोट तकलाकोट से नब्बे मील है और अल्मोड़ा से सत्तर मील, तनकपुर रेलवे स्टेशन यहां से ८० मील पर होगा। असकोट पहले बड़ी रियासत थी और इसकी प्रभुता नैपाल से काबुल तक फैली हुई थी। समय के हेर फेर ने हिमाचल के इस उच्चस्थल पर भी अपना प्रभाव डाला और अब यह छोटे से ताल्लुके के बराबर है। यहां के क्षत्रियो का सम्बन्ध नैपाल के क्षत्रियों के साथ होता है। रंग रूप मे मंगोलियन पन के चिन्ह इनमे नही है। बहुत ही अच्छा हो यदि राजपूताना तथा अन्य प्रान्तो के राजपुत्रो के विवाह सम्बन्ध इस ओर होने लग जाये ताकि परस्पर की विभिन्नता दूर होकर एकता के सूत्र की वृद्धि हो।

२८ अगस्त से २ सितम्बर तक मै असकोट मे दो तीन दिन रहा, यहां का जलवायु बडा नीरोग है। मेरी इच्छा यहां कुछ दिन ठहरने की थी, पर अल्मोड़ा से अपने एक प्रेमी का पत्र पाकर मैने अपना प्रोग्राम बदल दिया। मुझे पता लगा कि सयुक्त प्रान्त की खुफिया पुलिस के धूर्त्त- अधिकारी चिरंजीलाल ने मेरे विरुद्ध बहुत सा षड़यन्त्र रचा है। उसने भारत के वाइसराय, लार्ड हार्डिग, के कानो तक यह झूठी बात पहुंचा

दी कि स्वामी सत्यदेव, तिब्बत की ओर से भारत पर धावा करने वाले बाग़ी हिन्दुस्तानियों के साथ मिलने के लिये तिब्बत गया है। उस मूर्ख चिरञ्जीलाल की समझ में यह आया कि कैलाश यात्रा का तो केवल मेरा बहाना मात्र था, मै कौम परस्त हिन्दुस्तानियो के दल मे सम्मिलित होने के लिये भारत से भाग कर तिब्बत चला गया हूं। अंग्रेज़ी सरकार की आंखो मे धूल झोंक कर इस देश द्रोही चिरंजीलाल ने मेरे पकड़ने का परवाना वाइसराय महोदय से प्राप्त कर लिया और मेरी गिरफ्तारी की कुल तैयारियां कर दल बल के साथ अल्मोड़ा आ पहुंचा और चारों तरफ पुलिस के दूत दौड़ा दिये। मुझे चिरंजीलाल के इस प्रपंच की कुछ भी ख़बर न थी। मै तो कैलाश यात्रा के लिये ही गया था और उसको पूरा कर भारत लौट रहा था। चिरंजीलाल को जब यह मालूम हुआ कि सत्यदेव वापस आ रहा है, तो उसके हाथों के तोते उड़ गये, क्योकि मेरे इस प्रकार वापस आने से उसकी बुरी तरह पोल खुलती थी। उसने भिन्न भिन्न नगरों से मेरे नाम खुफिया चिट्ठियां भिजवायीं और यह डर दिखलाया कि यदि मै भारत लौट आऊँगा तो गवर्नमेंट मुझे गिरफ्तार कर लेगी; साथ ही यह भी लिख दिया कि भाई परमानन्द जी के पास जो खुफिया पत्र मैंने भेजे थे, वे सब पकड़े गये हैं। इन पत्रो को पाकर मुझे हँसी आई और चिरंजीलाल के कमीने पन पर अफ़सोस हुआ। स्वार्थी पुरुष नीच से नीच कर्म करने से भी नहीं हिचकिचाता। वह अपने स्वार्थ के लिये अपनी जननी को भी बेच सकता है। मैंने इस चिरंजीलाल का कभी कुछ नहीं बिगाड़ा था। लेकिन जब से मैं अमेरिका से लौटा था, इस नीच ने मेरे विरुद्ध अत्यन्त झूठी बाते सयुक्त प्रान्त के अधि-

कारियो क कानो मे भर दी थी। अंग्रेज़ हाकिम कानों के कच्चे तो होते ही है, उन्होंने सत्य बात जानने की कभी कोशिश न की और एक निरपराध व्यक्ति के विरुद्ध पुलिस के दफ्तर काले किये। ऐसी ही झूठी बातो को फैलाकर चिरंजीलाल सरकार का बड़ा प्यारा बन गया और उसकी पहुंच देश के बड़े २ राज्य कर्मचारियों तक होगई। बहुत वर्षो तक इस अधम ने मेरा पीछा किया और बराबर मेरी डाक खुलती रही, साथ ही मेरे ही आदमियों द्वारा मेरी तलाशियां भी करवा लीं। मै सदा सत्य के रास्ते पर चलता रहा हूं, इसलिए कभी कोई मौका पुलिस को मुझे पकड़ने का नहीं मिला।

खुफिया विभाग के इसी प्रपंच के कारण अल्मोड़ा मे मेरी गिरफ्तारी की खबर चारो तरफ फैल गई। मेरे प्रेमी घबड़ा गये। उसी घबड़ाहट के वशीभूत होकर उन्होने मुझे भारत न आने की सलाह दी थी। असल मे यह मायावी जाल खुफिया पुलिस का फैलाया हुआ था। असकोट मे जब मुझे ऐसे पत्र मिले तो मै फौरन ताड़ गया, क्योकि भाई परमानन्द जी के साथ मेरा कभी भी पत्र व्यवहार नही हुआ था, इसलिये चिरजीलाल की सब धूर्त्तता मुझे फौरन स्पष्ट होगई। *

* कैलाश यात्रा करने के बाद जब मैं अल्मोड़ा पहुंच गया, तो कुछ दिनों के बाद एक खुफिया पुलिस का आदमी, साधु वेष में मेरे पास आया और मुझसे पूछने लगा—"क्या असकोट में हथियार मिल सकेंगे?" मैं उसकी शरारत समझ गया। मैंने उसे फटकार कर अपने स्थान से निकाल दिया। यह टिकटिकी पंजाबी था। इस प्रकार खुफिया पुलिस के टिकटिकियों द्वारा न जाने मैं कितनी बार भयानक परीक्षाओं मे डाला गया हूं—लेखक

मैने वे सब पत्र फाड़ कर फेंक दिये। बेइख्तियार मेरे मुंह से निकला—

जिन्हां रक्खे साइयां मार न सक्के कोय।
बाल न बांका कर सके जो जग बैरी होय॥

वाली बात है; निश्शङ्क निर्द्वन्द हो अल्मोड़ा की ओर प्रस्थान किया। यहां से अल्मोड़ा की तरफ सुन्दर सड़क गई है। कुली असबाब उठाये ले जा रहा था। इधर के मज़दूर बोझा उठाने में गज़ब करते हैं, दो दो मन बोझ पीठ पर लाद ऊंची ऊंची चढ़ाई चढ़ जाते हैं। इस सड़क पर जगह जगह जंगलों से वर्षा का पानी आ रहा था। असकोट से सात मील पर चौरस भूमि में डीडीहाट है, यहां एक पाठशाला है, दो तीन दुकानें है। यहां मैं नहीं ठहरा, तेज़ी से बढ़ा चला गया। मुझे आज थल पहुंचना था।

पैंतीसवां पड़ाव

थल से बेरीनाग

यह ग्राम रामगङ्गा के किनारे बसा है। साल में एक बार संक्रान्ति के मौके पर यहां भी मेला भरता है और छः दिन तक रहता है। जैसे बागेश्वर के मेले में भोटिये लोग माल बेचते हैं, ऐसे ही यहां भी ये लोग तिब्बती घोड़े, चंवर, चुटके, थुल्मे, पखियाँ, नमक, सुहागा आदि बेचते हैं। अल्मोड़े से कपड़ा, बर्तन, तम्बाकू, मिश्री आदि चीजें यहां बिकने आती है। यहां एक पाठशाला और छोटा डाकखाना भी है। थल डीडीहाट से दस मील पर होगा; रास्ते मे तीन मील का उतार पड़ता है।

मध्यान्ह के बाद तीन बजे थल पहुंचे। यहां भी भोटिये लोगों ने बड़े आदर सत्कार से ठहराया। पहाड़ी लोग सुस्त है, मगर भोटिये बड़े होशियार है। ब्राह्मण, क्षत्री भूखे कठिनाई से दिन बिता रहे है, लेकिन ये लोग व्यापार कर आनन्द से जीवन काटते है। यह सब उद्योग की बात है। उच्च वर्णो के लोग नौकरी के फेर मे पड़े है, वे नौकरी के सिवाय दूसरा धन्धा नही जानते, परिणाम यह है कि उनकी दशा बड़ी हीन है।

रामगङ्गा के यहां फिर दर्शन हुये। तेजम मे इससे बाते की थी, उस समय इसका जल स्वच्छ था, आज कल इसका पेट बढ गया है, रंग बदला हुआ है; सरयू जी से भेट करने को बड़ी शीघ्रता से जा रही है।

रात को यही ठहरे। चलने की जल्दी थी, इसलिये उपदेश आदि का प्रबन्ध नही किया, इच्छा शीघ्र अल्मोड़ा पहुंचने की थी। दूसरे दिन सबेरे चल पड़ा। तीन मील बराबर मैदान चला गया है। जगल की शोभा अनुपम है। आगे अच्छी मजेदार चढ़ाई है, ठण्डी सड़क है, कुछ दिक्कत मालूम नहीं होती। रास्ते मे एक नाले के पास स्नान ध्यान से निश्चिन्त हो गया। दस बजे सबेरे बेरीनाग पहुंचा, यहां डाकखाने मे मेरी डाक जमा थी, इसलिये यहां पांच चार घटे व्यतीत किये।

बेरीनाग अल्मोड़ा से ब्यालीस मील पूर्व की ओर है। इसकी ऊचाई छः हज़ार फीट से कुछ अधिक ही होगी। यहां चाय के बड़े २ बगीचे हैं और इस जगह से हज़ारो रुपये की

चाय हर साल बाहर जाती है; खासा व्यापार होता है। यहां पोस्टआफिस, डाक बंगला, पाठशाला, गिरजाघर—सभी कुछ है; गोरे जमीदारों तथा ईसाइयों का यहां जोर है और वे ही अधिकांश चाय के बगीचों के स्वामी हैं।

मुझे यहां अधिक नहीं ठहरना था। रायबहादुर कृष्ण-सिंहजी* यहां से छः सात मील पर झलतोला में रहते थे, मुझे उन्हीं के पास जाना था। मध्यान्ह बाद उनका आदमी घोड़ा लेकर आया। शाम को झलतोला पहुंचे। यह भी रमणीक स्थान है; जल वायु नीरोग और दृश्य मनोहर है; पंचाचूली की चोटियां यहां से स्पष्ट दिखाई देती हैं और जब उन पर सूर्य्य की किरणें पड़ती है तो अजब बहार होती है।

मै यहां दो सितम्बर तक रहा; यात्रा की थकान को दूर किया। रायबहादुर कृष्णसिंह जी बड़े देशहितैषी सज्जन थे। आप अपनी शक्ति अनुसार देशहितकार्यों में योग देने मे सदा तत्पर रहते थे। यद्यपि आप वृद्ध थे, पर उत्साह आपका युवकों जैसा था। आपने पूर्वी पश्चिमी तिब्बत मे कई वर्षों तक भ्रमण किया और अत्यन्त कष्ट सहन कर वहां के नकशे तय्यार किए। तिब्बत-अन्वेषण मे आप—"A. K. Pandit ए० के० पण्डित" के नाम से प्रसिद्ध थे। आपसे तिब्बत सम्बन्धी वार्तालाप कर चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। तिब्बत सम्बन्धी जितना ज्ञान आपको था, शिक्षित संसार में उतना दूसरों को कम होगा। दुःख है कि आपकी वाकफियत से हिन्दी ससार को कुछ लाभ नहीं पहुंचा। यदि आप अपने तिब्बत-अन्वेषण

* दुःख है कि रायबहादुर कृष्णसिंह जी का कुछ वर्ष हुए, देहान्त हो गया। अब उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री दुर्गासिंह जी रावत झलतोला में रहते है—लेखक

की यात्रा पर कोई ग्रन्थ लिख डालते तो वह अपने ढङ्ग की अद्वितीय पुस्तक होती।

छत्तीसवां पड़ाव

यात्रा का अन्त

३ सेप्टेम्बर शुक्रवार—झलतोला से अल्मोड़ा ३६ मील होगा। बड़ी सुन्दर सड़क बेरीनाग से अल्मोड़ा तक गई है। जैसे कोई सैलानी आदमी ठण्डी सड़क की सैर करने जाता है, ठीक ऐसा ही रास्ता है। आनन्द से घोड़े पर सवार शीतल वायु की अठखेलियां देखता हुआ चला गया। रायबहादुर साहब ने घोड़े का प्रबन्ध करदिया था, इसलिए पैदल चलना नहीं पड़ा। आज कल यह मार्ग विचरने योग्य होता है। धोए धाए वृक्ष, हरियाली से लदी हुई पहाड़ियां, स्थान स्थान पर जल की कलकल ध्वनि, पशु पक्षी सब प्रसन्न, वर्षा का अन्त—सचमुच मनुष्य को खुशी के मारे नशा सा चढ़ जाता है। भला मैदान के रहने वाले इस सुख को क्या जाने। लू मे मरने वाले, धूल फांकनेवाले, पसीने की बदबू मे बसनेवाले इस मजे को अनुभव नही कर सकते। यह मजा सचमुच सब से निराला है।

सड़क पर जाता हुआ यही सोचरहा था—"ईश्वर ने अपने प्यारे भारतीयो को क्या ही सुन्दर सुहावना देश दिया है। उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम–चारों ओर रमणीक पर्वतमालाये है। क्या हम उनसे लाभ उठाते है? बिल्कुल नही। गरमियो मे झुण्ड के झुण्ड यात्रियो को इधर आना चाहिए; इधर की नैसर्गिक छटा का सुख भोगना चाहिए। इन पर्वतो पर अच्छी

अच्छी पाठशालाओं की आवश्यकता है; यहां बड़े बड़े कालिज खुलने उचित है। अमरीका और योरुप में प्राकृतिक शोभा विशिष्ट पर्वत-स्थलियों मे कैसे कैसे विश्व-विद्यालय खुले हुए हैं; वहां के विद्यार्थी कैसे बलिष्ठ होते है। क्या हमारे यहाँ वैसे स्थानो की कमी है? नहीं, फिर क्यों हमारे लीडर उनका सदुपयोग नहीं करते? हा! इस प्रश्न का उत्तर लिखते हुए छाती फटने लगती है। जिन सुरम्य स्थानो पर कालेज, विश्वविद्यालय, गुरुकुल, ऋषिकुल आदि बनने चाहिये, वहाँ भैंसे और बकरे कटते है।

भारत सन्तान! अपने देश के पर्वतों का सदुपयोग करना सीखिए। ग्रीष्म ऋतु मे अपने आसपास के पहाड़ो पर जाकर वहां की प्राकृतिक शोभा देखिए; प्रकृति माता से बातें करने का अभ्यास कीजिए। अपने देश के पर्वतों को छान डालिए; उनकी वन्यता का उपयोग जानिए। यदि आप सामर्थ्यवान है, तो पर्वतों में अपना ग्रीष्म-गृह बनवाइए और इर्द गिर्द की भूमि मे निर्धन विद्यार्थियो के रहने लायक मकान बनवा दीजिए ताकि मैदान के विद्यार्थी छुट्टियों मे आकर वहां रह सकें। अपनी सुस्ती निकालने के लिये हमे पहाड़ो मे विचरने की आवश्यकता है; हमें अब पहाड़ों को अपनाने की जरूरत है।

परन्तु एक बात का ध्यान रखना होगा। अबतक तो मैदानवालो की बुराइयां ही पहाड़ो मे पहुंची है; अबतक अधिकांश कामान्ध धनी, राजे, नवाब पहाड़ो मे व्यभिचार फैलाने के लिए ही जाते है, अबोध पहाड़ी कन्यायें उनके अत्याचारों से अत्यन्त दुखी है; वे धन के लिए बेची जाती है। हमारा उद्देश्य पर्वतों में शिक्षा प्रचार, आरोग्यता लाभ और प्राकृतिक दृश्यो की मनोहारिणी छबि देखना होना चाहिए। हमे पर्वतो

में विद्या-केन्द्र बनाने उचित है। जो लोग केवल यात्रा के विचार से—मन्दिरो को हाथ लगाने के लिए गिरि कन्दराओ मे घूमते है उनको कुछ भी लाभ नहीं होता। अपने पूज्य मन्दिरो के दर्शन कीजिये, किन्तु साथ ही आंख कान खोलकर प्राकृतिक सुन्दरता भी अनुभव करते जाइये, खाली धक्के खाने से कुछ लाभ नही होता।

चार सितम्बर को धौलछीना से सबेरे ही चलकर ग्यारह बजे के करीब अल्मोड़ पहुंच गया। १६ जून को मै यहां से श्री कैलाश दर्शन के लिये निकला था, अढ़ाई महीने से कुछ अधिक दिन मुझे इस बिकट यात्रा मे लग गये।

यहां अल्मोड़े मे मेरे विषय मे तरह तरह की चर्चा फैली हुई थी। कोई कहता था—"सत्यदेव के नाम का वारन्ट निकला हुआ है और पुलिस उनको पकड़ने के लिये असकोट गई हुई है।" किसी ने उड़ाया—"सत्यदेव तिब्बत भाग गये और अब जरमनी जा रहे है।" बड़े बड़े पढ़े लिखो मे ऐसी ही बाते फैल रही थी। जो प्रेमी मिलने आते, वे यही कहते—"हमने सुना था कि आपके नाम का वारन्ट निकला हुआ है।" डाक जो मिली थी, उसमे भी विचित्र चिट्ठियां नीचे मैदान से आई थीं। कई सज्जनो ने बिहार प्रान्त से पत्र भेजे—"हमने सुना है आपके व्याख्यान एक वर्ष के लिये बन्द कर दिये गये है।" कहां तक लिखू। मैने जो एक वर्ष के लिये, व्याख्यान बन्द कर देने का नोटिस निकाला था, उसके मूर्ख लोगो ने तरह तरह के अर्थ लगाये और मुझे बदनाम करने के लिये घृणित से घृणित बाते फैलाई गईं। भारतवर्ष की

जनता अनपढ़ है, वह गप्पों पर झट विश्वास कर लेती है, उनमें सोचने की बुद्धि नहीं। जिस साहित्य-सम्बन्धी कार्य तथा मानसिक शक्ति उपार्जन के निमित्त मैंने एक वर्ष तक एकान्त सेवन का विचार किया था, लाचार होकर मुझे कुछ काल के लिए उस विचार को स्थगित कर देना पड़ा। इस अभागे देश की ऐसी दुर्दशा है कि यहां मार्ग मे कांटे बोनेवाले अधिक हैं, मगर कार्य में हाथ बटाने वाले बहुत ही थोड़े है। कई भले मानसों का तो झूठी बातें उड़ाना पेशा ही है।

पाठक महोदय, साधन रहित, फोटोग्राफर के बिना, योरुपीय महाभारत के समय में मैंने श्री कैलाश जी की यात्रा की थी। जो कुछ वर्णन, जो कुछ यात्रा का ब्योरा, मैंने दिया है वह आधुनिक 'सचित्र-युग' की परिभाषा के अनुसार तो है नहीं, मगर मुझे पूरा विश्वास है कि मेरी यह पुस्तक बहुत से सज्जनो को श्री कैलाश दर्शन के लिये प्रेरित करेगी। मुझे आशा है कि कोई योग्य हिन्दी हितैषी महाशय, साधन सम्पन्न होकर, तिब्बत जायेंगे और वहां का सचित्र वर्णन हिन्दी ससार की भेट करेंगे।

कैलाश दर्शन तथा मानसरोवर स्नान कर मैंने अपने जीवन की एक बड़ी इच्छा को पूर्ण किया। जो कुछ मुझे वहां आनन्द मिला, मैंने हिन्दी संसार को उसका भागी बनाने का यत्न किया है। यह पुस्तक केवल मेरे हृदय के उद्गार है। मैंने किसी योरुपीय वैज्ञानिक की तरह, अथवा अल्मोड़ा के किसी राजकर्मचारी की तरह बीस बीस मनुष्यो का बोझा लाद कर तिब्बत की यात्रा नहीं की थी, मै केवल एक कठिन व्रत पालनार्थ वहां गया था। उन दिनों जब कि भारत के सब

दरवाजे बन्द थे और बिना पासपोर्ट के कोई भारत से बाहर जा नहीं सकता था, मेरे जैसे पुरुप का साधन सम्पन्न हो कर तिब्बत जाना ही नही सकता था। अतएव सहृदय पाठक! यदि इस छोटी सी पुस्तक से कुछ भी आनन्द आपने अनुभव किया है, यदि भारत द्वारपाल हिमालय के दर्शनो की उत्कण्ठा आपके मन मे जागृत हो उठी है, यदि कमाऊ की भू-श्री की लावण्यता देखने की लालसा आप मे उत्पन्न हो गई है, तो मै समझूंगा कि मेरा उद्योग सफल हो गया।

मै चाहता हूं कि मेरे देश के बच्चे योरुपीय वैज्ञानिको की तरह हिमाचल का अन्वेपण करे; मेरी इच्छा है कि मेरे देशवासी अपने देश के पर्वतो की उपयोगिता को समझे; मेरी हार्दिक अभिलापा है कि भारत का शिक्षित समुदाय भारत के पड़ोसियो से परिचय प्राप्त करे। श्री कैलाश जी की यात्रा करने से मुझे दृढ़ विश्वास हो गया है कि भारत की भावी उन्नति के साधनो का असली रहस्य हमारे पर्वतो मे छिपा हुआ है और भारतोत्थान की अभिलाषा को प्रत्यक्ष करने के लिये हमे पूज्य हिमाचल की शरण लेनी पड़ेगी।

परमात्मन्! क्या मेरे देशबन्धु मेरी आवाज को सुनेंगे?

लीजिये ! पढ़िये !!

स्वतंत्रता की खोज में

अर्थात्

श्री स्वामी सत्यदेवजी परिव्राजक का आत्म-चरित

यो तो आपने बहुत सी आत्म-कथायें पढ़ी होंगी, बड़े बड़े सेनापतियों और महात्माओं के जीवन-चरित्र आपकी दृष्टि से गुजरे होंगे, किन्तु यह चीज़ है बिल्कुल निराली। इसमे आपको स्वावलम्बन का जीता जागता उदाहरण मिलेगा। निर्धन और साधनहीन नवयुवक इस विकट संसार मे किस प्रकार अपना मार्ग बनाता है और अपनी लड़ाइयां लड़ता है, इसका रोमांचकारी वर्णन इसमे है। राबिन्सन क्रूसो जैसी दिल को हिलाने वाली घटनाएं इसमें आपको मिलेंगी; अमरीका और योरुप के चलती फिरती तस्वीरों जैसे मनोहर वर्णन आप इसमे पायेंगे; आध्यात्म विषयों का मधुर रस कथा के रूप मे आप पान करेंगे; भारतीय राजनीति के नक्षत्रों का दर्शन आपको प्राप्त होगा; असहयोग की भीषण लड़ाई के रहस्यों की बातें आप जानेंगे; कहने का तात्पर्य यह है कि स्वामी जी की यह आत्मकथा मानव समाज के अनुभवो का आगार है। पूर्व और पश्चिम के सद्गुणों का संमिश्रण बड़ी खूबसूरती से इसमें मिलता है। स्वामीजी की लेखन-शैली निराली है। एक साहित्यिक व्यक्ति अपनी आत्मकथा को कैसे रोचक ढ़ंग से लिख सकता है, यह इसके पढ़ने से ही मालूम हो सकता है। ४०० पृष्ठ की इस पुस्तक का दाम केवल २) है। यह पुस्तक का प्रथम भाग है। पांच प्रतियां इकट्ठी मंगवाने वाले को डाक महसूल नहीं पड़ेगा।

दूसरा रत्न

हिन्दू-धर्म की विशेषतायें

आज पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से हमारे पढ़े-लिखे भाई अपने धर्म के वास्तविक स्वरूप को और इसकी सर्वश्रेष्ठ विशेषताओ को भी भुला बैठे है । इस अपने धर्म के प्रति अज्ञानता से ही वे नैतिक पतन की ओर अग्रसर हो रहे है; परन्तु अब इस पुस्तक को पाकर प्रत्येक हिन्दू (आर्य) बहुत प्रसन्न होगा और अपने धर्म की विशेषताओ को ब्योरेवार पढ़कर सम्प्रदायो के जङ्गल मे निर्भय होकर सिंह की तरह बिचर सकेगा । इस पुस्तक को पढ़कर आपको विदित हो जायेगा कि किन अद्भुत और अनुपम विशेषताओं के कारण यह हमारा प्राचीन धर्म हिमालय की तरह अचल खड़ा है । प्रत्येक हिन्दू गृहस्थ को यह पुस्तक अपने घर मे रखनी चाहिये । मूल्य ।–)

निकेतन-रत्न-माला का तीसरा रत्न

संजीवनी बूटी

अर्थात्

वीर्य-रक्षा का सरल उपाय

अपने ढ़ंग का यह एक अनूठा ग्रन्थ है । आरोग्यता के मूल तत्वो—वीर्य-रक्षा, व्यायाम और ईश्वर पर सच्चा विश्वास—की व्याख्या इस पुस्तक मे सरल भाषा मे की गई है । वीर्य जैसे अमूल्य रत्न की रक्षा कैसे हो सकती है तथा तत्सम्बन्धी व्याधियो का स्वाभाविक इलाज क्या हो सकता है, इन सब रहस्यमयी बातो का विस्तृत वर्णन आप को स्वामी जी की इस सर्वोत्कृष्ट कृति मे मिलेगा । मूल्य केवल ।।) ही रक्खा है

चौथा रत्न ! चौथा रत्न !!

मेरी कैलाश-यात्रा

१८३०० फीट ऊंचे हिमालय को लांघ कर, श्री स्वामी सत्यदेव जी सन् १९१५ मे तिब्बत गए थे। उस पावन भूमि श्री कैलाशजी के दर्शन और मानसरोवर के स्नान का यदि पुण्य लाभ लेना हो तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़िये और अपने मित्रों मे इसका प्रचार करिये । मूल्य ॥।)

पांचवां रत्न पांचवां रत्न

लेखन-कला

हिन्दी-साहित्य-ससार मे स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक ने जिस अद्वितीय लेखन-शैली के प्राभाव से आज यह नाम पाया है, उनके जिस कलावैचित्र्य की साहित्य-प्रेमी मुक्त कण्ठ से प्रशसा करते है; यदि सचमुच आप उस अनुपम लेखन-कला विपयक जानकारी प्राप्त करने के इच्छुक हैं और साथ ही साथ किसी दिन अपने आपको साहित्य-सेवी लेखक के रूप में देखना चाहते है तो आप इस पुस्तक को अवश्य ध्यान पूर्वक पढ़िये। तार्किक निबन्ध के सहयोग से इस ग्रन्थ-रत्न की उपयोगिता कई गुणा बढ़ गई है। कहानियो और निबन्धो के नमूनो के समावेश ने पुस्तक को अनूठे ढङ्ग से शृङ्गारित कर दिया है। मूल्य १)

श्री स्वामीजी की पूर्व कृतियां

अनुभव—इसमे सस्कृत और हिन्दी के सभी छन्दो के नमूने अत्यन्त सरल हिन्दी भाषा मे लिखे गये हैं। इन कविताओ को स्वामीजी ने जर्मनी मे बैठकर रचा था। छन्द अत्यन्त उपदेश-पूर्ण कण्ठाग्र करने के लिए है। मूल्य ।=)

मेरी जर्मन-यात्रा—इस पुस्तक मे स्वामी सत्यदेवजी की जर्मनी की यात्रा का बड़े मनोहर ढ ग,से वर्णन है। इसको पढ़ने से आप घर बैठे जर्मनी की सैर का आनन्द ले सकते है। यदि आप जर्मनो की प्यारी राहिन नदी का सुन्दर दृश्य देखना चाहते है तो आप एक बार इस पुस्तक को अवश्य पढ़िये। मूल्य १)

अमरीका भ्रमण—यात्रा सम्बन्धी यह पुस्तक एक उपन्यास के रूप मे लिखी गई है। अमरीका के बीहड़ और सर्द मैदानो मे बिना किसी गर्म कपड़े के स्वामी जी ने किस प्रकार राते बिताई और क्योंकर बिना किसी साधन के पैदल २३०० मील की यात्रा की, इन सब रोमाञ्चकारी घटनाओ का वर्णन आपको इस पुस्तक मे मिलेगा। मूल्य १)

संगठन का बिगुल—हिन्दू सगठन के सम्बन्ध मे स्वामी जी की लेखिनी से निकला हुआ यह अनुपम ग्रन्थ-रत्न भारतवर्ष के प्रत्येक कोने कोने मे पहुंच चुका है। इसकी हज़ारो कापियां हाथो-हाथ बिक चुकी है। मूल्य ॥)

ये सब पुस्तकें नीचे लिखे एजेन्टों के पास भी मिलती हैं —

(१) शारदा मन्दिर लिमिटिड, नई सड़क, देहली।

(२) गुरुकुल पुस्तक भण्डार, गुरुकुल कांगड़ी।